सोने का हिरन

पाँच

"लीजिए...! दरोगा साहब...! पिओ....अरे। पीलो....ये जिंदगी के जलवे फिर हाथ नहीं आने। मियाँ...! यह वह बूटी है, जो दुनिया की तमाम फिक्रों को दूर कर देती है।" खान साहब ने मस्ती के साथ कहा।

"नहीं....। पहले मैनेजर साहब को दो।" दरोगा साहब ने कहा।

"लो मैनेजर साहब....। आप ही शुरुआत कीजिए।"

"मैं शुरू करूँ। नहीं, नहीं...अरे! चौधरी साहब की तरफ से नम्बर लगने दो।"

"तो फिर चौधरी साहब...! नेक काम में क्या देरी? शुरू कीजिये।"

"भाई! यह तो खान साहब से शुरू हो, तब ही मजा आये।"

"वाह—! खूब कही—मेरे घर पर आओ—और मुझ ही से शुरू कराओ। वाह साहब....! खूब बनाते हो।" खान साहब ने कहा।

"तो चलो, चौधरी साहब से ही शुरू होने दो।" सबने मिलकर कहा।

"लीजिए चौधरी साहब।"

"मैनेजर साहब! आप भी अपना कप सँभालियेगा।"

"अच्छा जी।"

"दरोगा साहब...! कैसे ऊँघ रहे हो ? क्या बिना पिये ही नशा होने लगा ?"

"अभी तो रात का ही नशा नहीं उतरा, रात जरा पीकर देखी थी। नई बोतल मंगाई थी।"

"तो, फिर अच्छी थी ?" खान साहब ने मालूम किया।

"हाँ, अच्छी थी।"

"तो, लो अब, अब जरा हमारी बुरी भी पी कर देखो। अरे....! बुरी की बदौलत अच्छों की कदर होती है।"

"थोड़ी देना।"

"लो, डरते क्यों हो ? आधा ही कप है।"

"अच्छा, अब आप भी ले लीजिए अपने लिये।" सब ने खान साहब से कहा।

"वाह...! खूब बनाई है, बनाने वालों ने। जब तक रहता है इसका असर, अरे... ! दुनिया की चिन्ताओं से हो जाते हैं बे फ़िकर।"

"अबे—ओ हमीद....! ले, तू भी ले, ले पी ले, और पान लगाकर ला।" खानसाहब ने नौकर को हुकम दिया

"लीजिये सरकार।" हमीद ने पान लाकर कहा—"और यह रहा शिगार केश।"

"फिर कुछ मंगाओ ना, ताश ही मंगा लो, जरा, दो-चार बाजी खेल लें, दिल तो बहले।"

"जा भाई...! उठा ला...." खान साहब ने हमीद से कहा।

सोने का हिरन

(उपन्यास)

लेखक—

देवी प्रसाद धवन "विकल"

नवीनतम प्रकाशन

प्रथम संस्करण] [मूल्य रु ५-२५

सितम्बर १९६५

रोहतासनगर शाहदरा

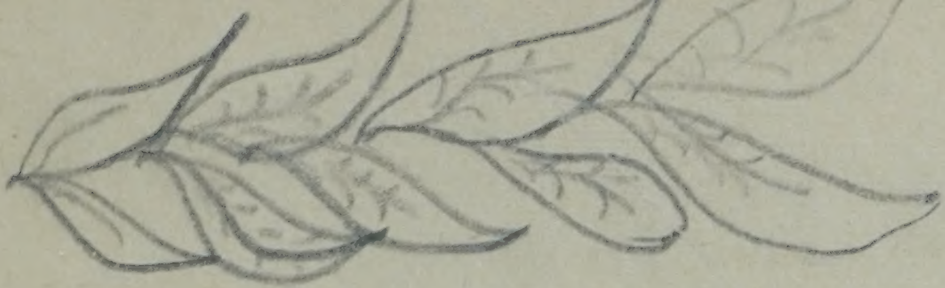
प्रकाशक—

ओम प्रकाश शर्मा फोन नं० : २१२४४
अध्यक्ष—नवीनतम प्रकाशन
११५७/१ शंकर भवन, बाबर रोड़
रोहतास नगर, शाहदरा
(दिल्ली—३२)

मूल्य—

पांच रूपये पच्चीस पैसे (५.२५)

मुद्रक:
पुष्प प्रिंटिंग प्रेस,
के १२, फोन नं० २१३०६२
नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२



हृदय ज्योति

प्रस्तुत उपन्यास "सोने का हिरन" देवी प्रसाद धवन 'विकल' की एक महान् कृति है। राम राज्य जिसका ठोस धरातल है। इस में मानवीय संस्कारों को सम्पन्न कर प्रगति की ओर अग्रसर किया है। राष्ट्र का अस्तित्व और उसकी परम्परा का भली-भाँति चित्रण किया है। लेखक का मुख्य उद्देश्य विश्व शान्ति एवं नव-निर्माण है। जिस पर भारतीयता गर्व करती हुई संसार के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करती है। राजीव इस उपन्यास का मुख्य पात्र है जिसका जीवन सत्य और धर्म है। भलाई और बुराई मनुष्य के लिए एक बहुमूल्य उपहार है, जो कि उसे नेकी और बदी के फलस्वरूप संसार देता है। कर्त्तव्य उसके स्वांस हैं, जिस के पथ पर चल कर चरित्र बनता है।

यह उपन्यास नव पीढ़ी के लिए उच्च चरित्र प्रस्तुत करता है। जिसकी स्वतंत्र भारत में अति आवश्यकता है। मैं समझता हूँ कि इस पुस्तक के विषय में इतना पर्याप्त है।

ओमप्रकाश शर्मा, साहित्य आचार्य,
११५७/१ रोहतास नगर,
शाहदरा, (दिल्ली—३२)

सत्यं, शिवं, तथा सुन्दरं,

को

यह कृति सादर

समर्पित

१५ सितम्बर १९६५ ई०........देवी प्रसाद धवन, "विकल'

एक

पं० चक्रधर अवस्थी का यह तीसरा विवाह है।

जब दो-दो विवाहिता स्त्रियों के होते हुये भी उनके कोई संतान नहीं हुई तो चक्रधर का मन दुनिया की रंगीनियों की ओर से उचाट हो गया, यद्यपि उनकी अवस्था अभी चालीसवाँ साल भी पार न कर पाई थी किन्तु एक अज्ञान शारीरिक, मानसिक एवं पुरुषोचित दुर्बलता ने उन पर अपना अधिकार-सा जमा लिया था। अटूट संपत्ति, अपार वैभव तथा अतुल ऐश्वर्य के भोग करने वाले का अभाव था।

पं० चक्रधर काशी आये। ज्योतिषाचार्य बागीश शास्त्री से वे मिले तथा उनके सम्मुख अपनी दुःख की गाथा प्रस्तुत की।

बागीश शास्त्री रहस्यमय व्यक्ति थे। वे बड़ी देर तक चक्रधर के मुँह और शरीर की ओर देखते रहे फिर एकाएक बोल उठे, 'तुम्हें मानसिक रोग है चक्रधर। तुम्हारे अवश्य संतान होगी।'

चक्रधर शास्त्री जी को धूर्तराज समझते थे किन्तु इस बात से

उनका हृदय कुछ खिल सा गया। मनोभावों को मन ही में दबाते हुये बोले, 'यह कैसे संभव....'

बागीश शास्त्री बीच ही में बोल उठे, इस मानसिक दुर्बलता को दूर करना मेरा काम है। तुम वात्सायन का काम-सूत्र पढ़ डालो। तुम में कुछ इन्द्रिय-जनित कमजोरी आ गई है। इसके लिये तुम्हें एक विवाह और करना पड़ेगा। घबड़ाना नहीं इस कन्या का प्रबन्ध मैं करूँगा -

'एक विवाह और ?' चक्रधर ने आश्चर्य के साथ ज्योतिषाचार्य के मुँह की ओर देखते हुये कहा।

'हाँ-हाँ, मैं ठीक कह रहा हूँ। तुम में किसी भी प्रकार की पुरुषोचित शक्ति का अभाव नहीं है। मानसिक एवं काल्पनिक दौर्बल्य ही आपको अशक्त बना रहा है। मैं इसका इलाज जानता हूँ।'

चक्रधार चुप रहे।

रंगपुर लौट कर आते ही चक्रधर को विवाह की चिन्ता हो गई। चारों ओर से विवाह के प्रस्ताव आ रहे थे। बहाने-बहाने से लोग कन्यायें लाकर चक्रधर को दिखलाने लगे। एक से एक रूपवती, कुलवती तथा शीलवती कन्यायें चक्रधर ने देखीं किन्तु वे इंकार ही करते गये। नंदा और चित्रा ने पति के इस आश्चर्यजनक और विचित्र व्यापार को देखा किन्तु मौन रहीं। चक्रधर ने उनसे किसी भी प्रकार की सलाह भी न ली थी।

दिन उड़ते गये और चक्रधर का स्वास्थ्य गिरता गया। अन्त में उन्हें एक दिन सूचना मिली कि काशी से ज्योतिषाचार्य बागीश शास्त्री आ रहे हैं।

चक्रधर का चित्त खिल-सा उठा। उस दिन उन्होंने अपना पुरुषोचित शृंगार किया। रेशमी चूड़ीदार पायजामा, सिल्क का लहराता हुआ कुरता, लखनऊ की आबे-खाँ की टोपी पहिन कर उन्होंने मुंह

पर क्रीम मली, सुवासित पान खाया और मोटर पर जाकर शास्त्रीजी को घर लिवा लाये।

आदर-सत्कार और भोजनोपरान्त जब शास्त्रीजी चक्रधर के साथ ड्राइंग रूम में बैठे तो उन्होंने कहा, 'सुनो चक्रधर, रामपुर के जमींदार पं० रमानाथ की कन्या से मैंने आपका निश्चित किया है। विवाह इसी लग्न में होगा। कन्या मेरी शिष्या है।'

चक्रधर आश्चर्य से बागीश जी के मुंह की ओर देखते रह गये। बागीशजी कहते गये, 'मैंने जो कुछ भी किया है आपके हित के लिये किया है। आपकी मनोवैज्ञानिक दुर्बलता दूर करनी ही पड़ेगी। आप अब कर्तव्य के लिये तैयार हो जाइये।'

'और कन्या...?' चक्रधर के मुँह से निकला।

बागीश जी क्षण भर रुक कर धीरे से कहने लगे, 'कन्या अद्वितीय है। मैंने ऐसी अनूप सुन्दरी जीवन में कहीं देखी नहीं। उसका सौंदर्य देखकर देव-कन्यायें भी लज्जित हो लठती हैं। तुम उसे पाकर सारे संसार को भूल जाओगे चक्रधर।

अन्दर ही अन्दर प्रसन्न होते हुये चक्रधर ने कहा, 'यदि मैं भी देख सकता...'

बीच ही में शास्त्रीजी बोल उठे, 'तुम उसे प्रथम बार अपनी सोहाग रात में ही देख सकोगे। तुम उसके किसी भी प्रकार से योग्य नहीं हो बस इतना ही संकेत समझ लो।

चक्रधर निरुत्तर हो गये थे।

बागीश शास्त्री कहते गये, तुम उसके रूप की कल्पना ही करते रहो। वात्सायन का काम-सूत्र पढ़ रहे हो न ?'

चक्रधर ने तुरन्त उत्तर दिया, वह तो बिचित्र पुस्तक है शास्त्रीजी। उसके अध्ययन से खोया हुआ पुरुषत्व वापिस सा आता हुआ प्रतीत होता है।

किंचित मुस्कराकर शास्त्रीजी ने कहा, 'अब तुम रास्ते पर आ रहे होचक्रधर। अभी क्या है, जरा इस विवाह को हो जाने दो। तुम तो इसी के गुलाम होकर रहोगे।

चक्रधर के मुंह से निकला, 'तब यह कार्य शीघ्र ही हो जाना चाहिए शास्त्रीजी।

शास्त्रीजी अपनी सफलता पर प्रसन्न हो रहे थे। बोले, 'इतने उतावले न हो। मैं सब कुछ ठीक कर चुका हूँ। केवल एक ही शर्त है?'

चक्रधर बोल उठे, 'क्या इस विवाह में कोई शर्त भी है?'

'हाँ-हाँ, कन्या साधारण नहीं है। वह जानती है कि आपके दो दो पत्नियाँ मौजूद हैं। वह आप पर एकछत्र शासन चाहती है।'

'अर्थात् ?' आंखें फाड़कर चक्रधर ने कहा

बागिश जी किंचित् मुसकराकर बोले 'आप घबड़ाइये नहीं। प्रत्येक स्त्री पति पर एक दम शासन करने की इच्छुक रहती है। वह चाहती है कि वह जब कभी जो कुछ कहे आप उसे पूरा करें।'

चक्रधर चौक उठे 'यह तो साधारण सी बात है। वह जो कुछ चाहेगी उसे करने के लिये मैं वचन-वद्ध होता हूं। मैं सत्य ही बोलता हूँ यह आप भली भांति जानते हैं शास्त्री जी। जो कुछ मेरे मुंह से निकलेगा पूरा होकर रहेगा।'

बागीश जी बोले 'तो तुम मुझको वचन देते हो चक्रधर ? देखो सोच-समझ कर ही वचन देना ?'

चक्रधर सचमुच बात के धनी थे। ताव में आकर बोले, 'प्राण रहते मैं अपने वचन से नहीं फिर सकता। लेकिन एक शर्त मेरी भी है।'

'वह क्या ?' शास्त्री जी ने पूछा

चक्रधर क्षण भर रुक कर बोले 'वह जो कुछ मुझसे माँगेगी मैं उसे दूंगा। जो कहेगी वही होगा, किन्तु यह सब लागू होगा संतान का मुंह

देखने के बाद ही। इसके पूर्व मैं किसी भी बात के लिये वचन-बद्ध नहीं हूँ।'

कुछ सोच कर शास्त्री जी बोले 'स्वीकार है। आपकी यह शर्त उसे स्वीकार हो जायगी। संतान तो आपके होगी ही। आपको ज्ञात होना चाहिये कि कन्या केवल अद्वितीय सुन्दरी ही नहीं है वरन् काम-शास्त्र में परिगत भी है। उसे आपकी यह शर्त स्वीकार होगी।'

चक्रधर गद् गद् हो गये। शास्त्री जी कहने लगे 'मैं आज ही काशी लौट जाऊँगा। विवाह की सूचना शीघ्र ही आपको मिलेगी। अब काम हुआ ही समझिये।'

चक्रधर चुप रहे, फिर बोले, 'इस कार्य में अब देर न होना चाहिये शास्त्रीजी।'

मुसकुराकर शास्त्रीजी ने कहा, 'अब इतनी जल्दी पड़ गई तुम्हें अवस्थी महाराज ? क्या वात्सायन ने अपना प्रभाव इतने व्यापक रूप में प्रारम्भ कर दिया ?'

चक्रधर मुसकुरा कर चुप हो गये।

*

दो

घरवालों का कहना था कि जिस दिन रात्रि में बारह बजे कान्ता का जन्म हुआ था, ठीक उसी समय आकाश में नक्षत्र टूटा था। सुन्दर सलोनी तथा गौर वर्ण की यह कन्या ज्यों-ज्यों बढ़ती गई त्यों-त्यों उसका रूप और लावण्य निखरता ही चला गया। अब वह ठीक उन्नीस वर्ष की थी।

किन्तु इसके अतिरिक्त और भी कुछ था।

जन्म-कुंडली तैयार करने वाले सामवेदी जी ने स्पष्ट ही कह दिया था कि इस कन्या को साधारण समझने की गलती मत करना आप लोग। परम ऐश्वर्यशालिनी, पति-प्रिया एवं शासकीय मनोवृत्ति वाली होने के साथ ही साथ यह कटु और कलंक-युक्त होती हुई कुसमय में वैधव्य प्राप्त करने वाली भी हो सकती है।'

बडे होने पर कान्ता ने भी इसे सुना। निर्लिप्त भाव से हंस कर वह बोल पड़ी 'ये सभी गुण मुझमें केन्द्री भूत हैं, इससे अधिक सुन्दर

और बात ही क्या हो सकती है !

जिस समय चक्रधर अवस्थी के विवाह का प्रस्ताव उसके पिता ने उसके सामने रखा तो उसने सहर्ष उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

मां ने कुछ चिढ़ कर कहा 'दो-दो सौतें जो वहां बैठी हैं तेरे सिर पर। पिस कर चूर हो जायगी दो दिन में।'

कान्ता निर्लिप्त भाव से बोली, 'मैं सौतों से क्यों डरूं ? उन्हीं की छातियों पर तो मूंग दलना है जाकर।

उसके पिता रमानाथ ने कहा 'पं० बागीश शास्त्री न जाने क्या मंत्र इसके कानों में फूंक गये हैं कि यह टस्स से मस्स नहीं होती। मैं क्या—,

बीच ही में कान्ता बोल उठी 'आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें पिता जी। मुझे मेरे भविष्य पर छोड़ दें। मैं इस विवाह-प्रस्ताव को स्वीकार करती हूँ।'

और इस प्रकार एक दिन शुभ मुहूर्त में पं० चक्रधर अवस्थी का विवाह कान्ता के साथ हो गया।

नंदा और चित्रा ने जो कुछ हुआ उस पर किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी नहीं की। जब कान्ता विवाह कर आई तो छोटी बहिन की भाँति उसका स्वागत किया।

× × ×

आज चक्रधर और कान्ता की सोहागरात है। चक्रधर संध्या से ही अपने शरीर को सजाने में व्यस्त है। वात्सायन के काम-सूत्र की प्रत्येक पंक्ति को वे रह-रह कर गुनगुना पड़ते हैं। शरीर को प्रत्येक प्रकार के प्रसाधन के द्वारा आज उन्होंने सुवासित बना लिया है। उस पर अवसर के अनुकूल परिधान सुशोभित हो रहे हैं। अपने में एक विचित्र प्रकार की तरुणाई वे अनुभव कर रहे हैं। आज एक अपूर्व सुन्दरी के सहवास में वे अपने को खो देंगे। उनको तिरस्कृत एवं संचित

बुबुक्षा आज तुष्टी चाहती है। अपनी अतृप्त आकांक्षाओं को चक्रधर अवस्थी आज समय के अंकुश से रोकना चाहते हैं किन्तु—

सजे-सजाये कमरे में बहुमूल्य पलंतग पड़ा हुआ है। दुग्ध-फेन शैया पर झीनी मसहरी के अंदर वस्त्रालंकारों से भुवन-मोहनी बनी हुई बाला घूंघट के अंदर सौंदर्य की छवि छिपा नहीं पाती।

चक्रधर यह सब कुछ देखकर स्तब्ध रह गये। उनके आने की आहट पाकर बाला धीरे से मसहरी हटाकर पलंग के बाहर आ गई।

इतना अलौकिक रूप?—देव-दुर्लभ सौंदर्य!!

चक्रधर ने धीरे से निकट जाकर पत्नी का घूंघट उलट दिया।

'इधर देखो' उसने मुग्ध वाणी में कहा

कान्ता ने दोनों नेत्र पति की ओर उठा दिये।

चक्रधर उन नेत्रों में ही डूब गये। उन्होंने धीरे से कान्ता का हाथ पकड़ लिया और उसे अपनी ओर खींचा।

आशा के विपरीत कान्ता ने अपना हाथ छुड़ाने की चेष्टा करते हुए मृदु-स्वर में कहा 'जरा ठहरिये।'

चक्रधर एकाएक रुक कर कान्ता की ओर देखने लगे।

कान्ता धीरे से बोली, आपने श्रद्धेय बागीश शास्त्री को कुछ वचन दिया है?

चक्रधर इस समय उतावले से हो रहे थे। वे बातों में समय नष्ट न करना चाहते थे। उनकी पुरुषोचित उमंग चरम सीमा पर थी। बोले 'याद है। मैं उस वचन का पालन करूंगा कान्ते।'

कान्ता ने फिर कहा' आपकी भी तो कुछ शर्त है।'

बातों का सिलसिला शीघ्र ही समाप्त करने की नीयत से चक्रधर ने कहा, 'हम दोनों ही अपने बचनों को पूरा करेंगे। किन्तु यह समय इन सब बातों के लिये उपयुक्त नहीं है। आज हमारी सोहागरात है, तुम क्या भूल गईं काँता?'

कह कर रसिकों की भाँति वे धीरे से मुस्करा दिये ।

काँता कहने लगी, 'आप ज्योतिषाचार्य बागीश शास्त्री के वचनों विश्वास रखते हैं ?'

मन ही मन कुछ खीझ कर चक्रधर ने कहा 'मैं उनकी बाणी को ध्रुव सत्य मानता हूँ काँता ?

कांता ने कहा, 'तब तो आज फिर हमारी यह सोहाग रात्रि सम्पन्न नहीं हो सकती । यह सप्ताह हमारी सोहाग रात के लिये अनिष्टकारी है। ऐसा शास्त्री जी का मत है। हमको अगले सप्ताह तक के लिये ठहरना होगा ।'

चक्रधर काम-ज्वर में जल सा रहा था। उसकी वासना पराकाष्ठा को छू रही थी। दोनों हाथों से काँता को पकड़ता हुआ स्फुट-स्वर में बोला, 'ऐसा नहीं हो सकता काँता, ऐसा नहीं हो सकता ।'

चक्रधर ने कांता को कस कर आलिंगन-पाश में बाँध लिया। बिना किसी प्रकार का विरोध प्रदर्शित करते हुए कांता ने कहा, 'जैसी आपकी इच्छा। किन्तु आप यह स्पष्ट रूप से समझ लें कि जिस उद्देश्य से आपने मुझे अपने चरणों में स्थान दिया है वह कभी सफल न हो सकेगा ।

'अर्थात् ?' चक्रधर के मुंह से निकला ।'

कांता धीरे से कहने लगी, 'बागीश शास्त्री के कथनानुसार आपने संतान-प्राप्ति की इच्छा से ही मुझसे बिवाह किया है। उनका दृढ़ विश्वास है कि काम-सूत्र के पंडित को स्त्री होते हुये कभी संतान का अभाव नहीं हो सकता। इस विद्या को लेकर उन्होंने अपने केवल दो ही शिष्य तैयार किये थे—एक आप और दूसरी मैं। वे प्रयोग कर रहे है। उनका दृढ़ विश्वास है कि हमारे अवश्य ही संतान होगी। फिर, हमको उनके ही द्वारा निर्धारित मार्ग पर ही तो चलना चाहिये ।'

चक्रधर के लिये क्षण भर भी रुकना कठिन हो रहा था। सामने अपूर्व सुन्दरी, विलासिता के उपादान, सुवासित लपटें, मुग्धकारी

वातावरण……फिर……

वे बोल पड़े, 'मैं ऐसा न कर सकूँगा। आज किसी प्रकार भी मैं शास्त्री जी की आज्ञा का पालन न कर सकूँगा।'

वे आगे बढ़े। काँता की मुखाकृति पर अब दृढ़ता खेलने लगी थी। वह प्रभावोत्पादक वाणी में बोली, 'किन्तु कदाचित आज ऐसा कभी न न हो सकेगा। मैं आपका भी हित को समझ रही हूँ और अपना भी। विलासिता के वातावरण में खड़े होकर पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक वासनामय हो जाती है। किन्तु मैं आपका अहित न होने दूँगी। आप विश्राम करें, मैं जा रही हूँ।'

काँता धीरे से द्वार की ओर बढ़ी। एक साधारण से कामुक व्यक्ति की भाँति चिल्लाकर चक्रधर ने कहा, 'रुको काँता, मैं जिस स्थिति में हूँ-

बीच ही में काँता बोल उठी, 'मैं भी उसी स्थिति में हूँ, किन्तु मैं ऐसे अवसरों पर अपना विवेक नहीं खो पाती। आप……'

चक्रधर बालकों की भाँति मचलता हुआ बोला, 'मुझ पर दया करो काँता……मैं……मैं……'

काँता दृढ़ शब्दों में बोली, 'आप कदाचित् मेरा स्वभाव जानते नहीं। मैं योजना बनाकर उस पर चलना जानती हूँ! आप इतने व्यथित क्यों हैं? यदि अपने को नहीं संभाल पाते तो आपके लिये और भी तो दो द्वार खुले हुये हैं। आज वहीं कहीं विश्राम कीजिये। सामने नंदा बहिन का कक्ष है—जाइये उधर ही चले जाइये।'

कांता चली गई। चक्रधर आज अपने को संभाल न पा रहा था। तृप्ति और तुष्टि के लिये वह व्यथित था। वह क्षण भर कुछ सोचता रहा, फिर सचमुच नंदा के कक्ष की ओर चल दिया।

कांता के स्थान पर नंदा की सोहागरात की पुनरावृत्ति हो गई थी।

*

तीन

नंदा के गर्भवती होने के समाचार ने कांता को विस्मय में डाल दिया। उसे न जाने क्यों नंदा के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हुई। सोहागरात के अवसर पर उससे जो गलती हो गई थी उसका अनुभव उसे आज हुआ।

अब चक्रधर की समस्या हल हो गई थी। भगवान जब देता है तब छप्पड़ फाड़कर देता है। महीने भर बाद कांता और चित्रा के भी पैर भारी हो गये।

उचित समय पर नंदा ने अपने ही अनुकूल एक सौम्य बालक को जन्म दिया। चक्रधर ने प्रसन्न होकर उसका नाम रक्खा राजीव लोचन, कांता ने भी पुत्र को जन्म दिया। चक्रधर ने उसका नाम रक्खा राजेन्द्र। चित्रा के एक साथ दो पुत्र हुए—उनके नाम रक्खे गये निशानाथ और चंद्रनाथ। चक्रधर का सूना घर पुत्रों की किलकारियों से गूंज उठा। एक के स्थान पर धन-सम्पत्ति के चार-चार

उत्तराधिकारी हो गये। ज्योतिषाचार्य बागीश शास्त्री का प्रयोग सफल हुआ। वाणी फलीभूत हो गई।

दिन बीतते है, मास बीतते हैं, वर्ष बीतते हैं और युग बीत जाता है। इस प्रकार चक्रधर की अवस्था के दिन भी व्यतीत होते चले गये। काँता को पाकर वे सारे संसार को भूल गये। उनका जीवन सार्थक हो गया था। अवस्था के साठ वर्ष पार करते करते वे सांसारिक वैभव से ऊबने से लगे। चारों पुत्र अब कार्य संभालने योग्य हो गये थे। शीघ्र ही बड़ें पुत्र राजीव का बिवाह साधु-प्रकृति नरेशचंद्र की गुणवती कन्या पुनीता के साथ सम्पन्न हो गया। पुनीता वास्तव में पुनीता थी। राजीव और पुनीता की जोड़ी एक आदर्श जोड़ी समझी जाती थी। राजीव के स्वभाव और व्यवहार पर सारा नगर मुग्ध था। न्यायशील होने के साथ ही साथ वह कभी मर्यादा को न भूलता था। उसे तीनों माताओं से समान रूप से प्यार था। यद्यपि तीनों छोटे भाई उसे श्रद्धा और प्यार की दृष्टि से देखते थे किन्तु निशानाथ की उसके प्रति अगाध भक्ति थी।

इतना योग्य पुत्र पाकर चक्रधर अपने को परम सौभाग्यशाली समझते थे। उन्होंने सभी कुछ राजीव पर छोड़ रख्खा था। घर भर में किसी को राजीव के प्रति किसी प्रकार की शिकायत न थी। सभी उससे संतुष्ट थे।

चक्रधर के मन में एक दिन एक मौलिक विचार सूझा। वे सब कुछ राजीव के हाथों में सोंप कर काँता के साथ तीर्थ-भ्रमण की बात सोचने और तय करने लगे। उन्होंने काँता के सामने अपना यह विचार प्रगट किया। कांता ने भी यह स्वीकार कर लिया।

चक्रधर ने वकीलों को बुलाकर परामर्श किया और सारी स्टेट का प्रबन्ध राजीव को सोंप देने के सम्बन्ध में लिखा-पढ़ी कर देने का आदेश दिया यह सब समाप्त कर देने और तीर्थ-यात्रा के लिये रवाना

होने का एक शुभ दिन भी निश्चित कर दिया गया।

किन्तु शुभ कार्यों में सदा से ही विघ्न पड़ता आया है। काशी से घूमते हुए ज्योतिषाचार्य बागीश शास्त्री रंगपुर आ पहुंचे। चक्रधर के पश्चात् उन्होंने कांता से भेंट की।

एकाएक धीरे से कान के पास मुंह ले जाकर उन्होंने काँता से कहा, 'यह सब क्या सुन रहा हूँ मैं काँता ? क्या राजेन्द्र को गली-गली का भिखारी बना देने का इरादा है ?'

कांता कुछ आश्चर्यान्वित सी होकर बोली, 'यह आप क्या कह रहे हैं शास्त्री जी ? राजीव के होते हुए राजेन्द्र को भला क्या.......'

बीच ही में शास्त्री जी बोल उठे, 'तू मूर्ख है। सौतेला बेटा कभी अपना नहीं हो सकता। क्या इसी दिन के लिये मैंने तुम्हारा विवाह चक्रधर से कराया था ? तुम क्या अपना भविष्य भी नहीं सोच सकतीं कांता ? पागल हुई हो ?'

कांता को शास्त्रीजी की बात रुचिकर न प्रतीत हो रही थी। बोली, 'किन्तु आप राजीव को नहीं जानते शास्त्री जी ? वह राजेन्द्र से अधिक मेरा आदर करता है। सारा नगर राजीव पर प्राण देता है। आप कैसी बातें कर रहे हैं ?'

एक कुटिल मुस्कान छोड़ते हुए शास्त्री जी ने कहा, 'मैं खूब समझता हूँ। चक्रधर के न रहने पर यही राजीव तुझे एक दिन सड़क पर निकाल कर खड़ा कर देगा। जब चारों भाई समान रूप से सम्पत्ति के अधिकारी हैं तो एक ही पर सब कुछ सौंप देने का मतलब क्या है ? यह कहाँ का न्याय है ? ऐसा किस शास्त्र में लिखा है ?'

कांता पर प्रभाव पड़ चला था। शास्त्रीजी कहते गये, 'मैं चक्रधर की इस नीति को खूब समझता हूँ। सभी पुत्र विवाहित हैं। सभी का समान अधिकार है सम्पत्ति पर। मैं पूछता हूँ.......

अब कान्ता ने कहा, 'आप ठीक कह रहे हैं। किन्तु मैं निरुपाय हूँ। मैं कर ही क्या सकती हूं ?'

शास्त्री जी फिर मुस्करा उठे, 'तुम क्या नहीं कर सकतीं काँता ? क्या अपने को भूल गईं। तुमने चक्रधर को संतान देने के लिये उसके साथ विवाह किया था। क्या उसी संतान को इस प्रकार भीख मांगते देख कर तुम्हारा हृदय न फट जायगा।'

काँता के चेहरे पर अब घबराहट स्पष्ट थी। वह बड़ी कारुणिक मुद्रा में बोली, 'तब आप ही मेरी सहायता कीजिये शास्त्रीजी। आपने मुझे बनाया है, उठाया है तथा वर्तमान रूप दिया है; मै क्या करूं, मैं क्या करूं.........'

मन ही मन संतोष का घूँट पीते हुये शास्त्री जी ने कहा, 'अब तुम ठीक राह पर आईं। कार्य में सफलता अवश्य मिलेगी। अब कष्ट दूर हो गया समझो।'

कहते कहते वे कांता की ओर एक विचित्र भाव से देखने लगे। उन्हें संसार में कांता से अधिक प्रिय और कोई वस्तु न थी। कांता ने एक बार दृष्टि उठाकर शास्त्री जी की ओर देखा और दृष्टि नीची कर ली। वह शास्त्री जी के उस अव्यक्त प्रेम को समझती थी।

शास्त्री जी धीमी वाणी में कहने लगे, 'पं० चक्रधर ने विवाह के पूर्व एक वचन दिया था। तुम्हें याद है न कांता। मैं बात जरा कम भूला करता हूं। याद आया ?'

कुछ सोचकर कांता ने कहा, 'याद तो है, किन्तु इस समय उससे क्या काम निकल सकता है ? मैं तो एक प्रकार से बाज़ी हार ही चुकी हूँ। अब क्या हो सकता है ? अब कुछ नहीं हो सकता।'

कांता फिर परिधि से बाहर जाने लगी। शास्त्री ने दृढ़ता के स्वर में कहा, 'सब कुछ हो सकता है। मैं जो मौजूद हूँ उस बात का साक्षी। यदि चक्रधर ने तुम्हारी बात पूरी न की तो फिर।'

'तो फिर ? यही तो प्रश्न है।' कांता ने धीरे से कहा।

स्फुट-स्वर में शास्त्री जी ने कहा, 'तो फिर चक्रधर चक्रधर न रहेगा कांता। शास्त्री को साधारण व्यक्ति न समझ लेना। मैं उसका अनिष्ट भी कर सकता हूँ।'

कांता कुछ समझ न पा रही थी। बोली, 'तो फिर मुझे आदेश दीजिए कि क्या करूँ ?'

शास्त्री कहने लगा, 'तुम आज ही चक्रधर से सारी सम्पत्ति राजेन्द्र के लिए मांग लो। मैं जानता हूं कि राजीव इस विषय को लेकर झगड़ा खड़ा कर देगा। घर के सारे प्राणियों को अपनी ओर मिला लेगा। फिर—फिर—'

कांता कह पड़ी, 'यहीं आप भूल रहे हैं शास्त्री जी। राजीव पिता की बात नहीं टाल सकता। आप निश्चित रहें—'

शास्त्री जी ने बीच ही में कहा, 'तुम नादान हो कांता। शास्त्री को समझाने का प्रयत्न न करो।' 'अवसर चुकी डोमिनी गावै ताल बेताल'। मैंने अपना सारा जीवन तुम्हें बनाने में लगा दिया है।'

कांता भली भांति कुछ समझ न सकने के कारण बोली, 'किन्तु मैं करूं क्या ?'

अपनी बात को अधिक स्पष्ट करता हुआ शास्त्री बोला, 'तुम आज ही पति से रूठकर बैठ जाओ। जब वे तुमसे मिलें तो तुम कहना कि आपने विवाह के पूर्व मुझे वचन दिया था कि संतान उत्पन्न होने के पश्चात् तुम जो भी कहोगी करूँगा, जो भी मांगोगी में दूंगा। आज मैं कुछ मांगना चाहती हूँ। और जब वे अपने वचन को निभाने के लिए तैयार हो जायें तो तुम यह मांगना कि राजीव के स्थान पर राजेन्द्र को सारी सम्पत्ति मिले।'

सूखे मुँह से कांता ने कहा, 'ठीक है।'

शास्त्रीजी बड़ी ही गंभीर वाणी में बोले, 'यही नहीं इसके अति--

रिक्त तुम दूसरी बात यह कहोगी कि राजीव इसी समय घर छोड़ कर चला जाय और कभी इस घर में कदम न रखे।'

कांता कांप कर बोली, 'यह कैसे हो सकता है ? मैं अपनी जिह्वा से यह कैसे कह सकूंगी ? वे भी यह कैसे कर सकेंगे ? नहीं, यह असम्भव है।'

शास्त्री फिर स्फुट वाणी में बोला, 'सब कुछ सम्भव होकर रहेगा। तुम नहीं जानतीं कि राजेन्द्र कितना भोला नवयुवक है। यदि वह राजीव के साथ रहेगा तो फिर जीवन-भर अपने पैरों पर न खड़ा हो सकेगा। यह तो करना ही पड़ेगा।'

कांता नीचा सिर किये बैठी रही ।

शास्त्री बोला, 'तुम नहीं जानतीं कांता कि मैंने जीवन में कितना बड़ा त्याग किया है। मैं तुम्हें प्यार करता था किन्तु प्यार का सबसे बड़ा मूल्य त्याग है। मैंने तुम्हारे लिये—अपने प्यार के लिए—जीवन-भर सन्यास-आश्रम ग्रहण किया है। हम परस्पर एक-दूसरे को प्यार करके परम पुनीत हैं। मैंने अपनी अतृप्तियों पर अधिकार रक्खा है। तुम्हें बनाने के लिए अपने को मिटा दिया है। तो क्या अब तुम्हें अंधकार में छोड़कर मेरी तुष्टि हो सकेगी ? मैं अपना कार्य पूरा करके सदा के लिये कहीं चला जाऊँगा। मेरे प्यार की यही तुष्टि होगी।'

कांता के नेत्र सजल थे। वह बोली, 'आप जो चाहते हैं वह होकर ही रहेगा। मैं अपने हृदय को पाषाणवत् बनाकर इस अनुष्टान को पूरा करूँगी। यदि उन्होंने मेरी बात न मानी तो मैं अपने प्राण दे दूँगी, किन्तु पीछे न हटूंगी। आप मेरा विश्वास करें ।

शास्त्रीजी के चेहरे पर मुसकान दौड़ गई थी। वे बोले, 'अब मैं प्रसन्न हुआ कांता। मुझे विश्वास हो गया कि तुम्हें पूर्ण सफलता मिलेगी। अब मैं चला।'

चार

चक्रधर वकीलों के साथ व्यस्त थे। वे कल ही कांता को साथ लेकर तीर्थ-यात्रा के लिए रवाना हो जाना चाहते थे। उन्होंने वकील को अपना दृष्टिकोण समझाते हुये कहा, 'कल इसकी रजिस्ट्री हो जानी चाहिए। कल का दिन भी इस कार्य के लिए शुभ है।'

वकील ने चश्मा उतारते हुए कहा, 'आपका यह कार्य बड़ा सुन्दर रहा। राजीव तो सर्वप्रिय पुत्र है आपका। उसके हाथ में सम्पत्ति तो सुरक्षित रहेगी ही साथ ही साथ घर के लोग भी सुखी होंगे। मैं इस कार्य को कल ही पूरा कर दूंगा। आप निश्चिंत रहें !'

प्रसन्नता से गद्गद् होते हुए चक्रधर ने कहा, 'राजीव मेरा प्राण है। मैं कभी-कभी यह सोचने लगता हूँ कि उसे छोड़ कर मैं तीर्थ-यात्रा कैसे कर सकूँगा।'

वकील कुछ और कहना चाहते थे किन्तु तभी दासी ने आकर कहा, 'जल्दी चलिये मालिक। छोटी बहूजी की हालत एकाएक खराब हो

गई है। चलिये, जल्दी करिये।'

चक्रधर भड़भड़ाकर उठ खड़े हुये। वकील साहब ने कहा, 'आप अविलंब जाकर देखें कि बहूजी को क्या कष्ट है। मैं अपना काम देखता हूँ।'

चक्रधर कांता के कक्ष में पहुँचे, किन्तु—

कक्ष में मातम-सा छाया हुआ था। मलिन वस्त्र और अस्त-व्यस्तावस्था में कांता एक सोफे पर पड़ी हुई थी। केश छिटके हुए धरती तक लटक रहे थे। कुछ विचित्र-सा वातावरण था कमरे का। नौकर तथा नौकरानियाँ कमरे के अन्दर-बाहर चुप खड़े हुए काना-फूसी कर रहे थे।

चक्रधर स्तब्ध खड़े रह गये। उन्होंने साहस करके निकट खड़ी हुई नौकरानी कुंठा से धीरे से पूछा, 'क्या हुआ बहूजी को ?'

तभी क्रोध से दांत काटती हुई कांता ने स्फुट-स्वर में कहा, 'क्या यहाँ आकर मुझसे पूछने में कुछ डर लगता है आपको ?'

कह कर वह कुछ विचित्र प्रकार से मुस्करा दी। चक्रधर ने कभी जीवन में किसी नारी का इतना विकृत, भयंकर और डरावना रूप न देखा था।

वे चुपचाप कांता के पास जाकर बैठ गये।

कांता उसी प्रकार विकृत स्वर में बोली, 'कहिए अवस्थी जी महाराज, आपकी जायदाद-सम्बन्धी सब लिखा-पढ़ी समाप्त हो गई न ?'

चक्रधर कुछ चौंके से किन्तु धीरे से बोले, 'शायद कल तक सब समाप्त हो जाय।' किन्तु—

बीच ही में कांता बोल पड़ी, 'किन्तु अब वह कभी समाप्त न हो सकेगी। सब समझ गये न आप ?'

कहते-कहते उसने एक विचित्र प्रकार की दृष्टि से पति की ओर देखा।

चक्रधर के मुँह से धीरे से निकला, 'यह क्या कह रही हो कांता ? तुम्हीं ने तो—'

गला सा फाड़ते हुए कांता ने कहा, 'तो फिर साफ ही सुन लीजिये पंडित जी। यह सब कुछ अब न हो सकेगा। विवाह के पहिले दिये हुये वचन आपको याद हैं न ?

दृढ़ता के स्वर में चक्रधर ने कहा, 'याद है, सब याद है। मैं अपने वचनों से प्राण रहते कभी नहीं फिर सकता। बोलो तुम क्या चाहती हो ?

कांता पति के चेहरे पर नेत्र गड़ा कर देखने लगी। चक्रधर कहने लगे, 'मुझे तुम प्रिय हो और अपने कहे हुये वचन भी। आज मैं अपने वचनों को पूरा करूँगा। बोलो, 'क्या चाहती हो तुम कांता ?'

कांता बोली, 'और यदि आपने अपना वचन न पूरा किया तो ?'

चक्रधर दृढ़ता के स्वर में बोले, 'ऐसा कभी नहीं हो सकता। तुम जो चाहो वह मुझसे मांग सकती हो।'

कांता कहने लगी, 'और मेरा भी प्रण साफ-साफ सुन लीजिए। मैंने जो कुछ मांगा और यदि आपने उसे न दिया तो निश्चित रूप से समझ लीजिये कि मैं अपने प्राण दे दूँगी। फाँसी लगाकर मर जाऊँगी।'

स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए चक्रधर ने धीरे से कहा, 'इतनी उत्तेजित मत हो कांता। तुम जो कहोगी वही होगा। जो मांगोगी वही मिलेगा।'

कांता उठकर खड़ी हो गई और बोली, 'मैं केवल दो ही बातें चाहती हूँ।'

'वे क्या ?' किंचित मुस्करा कर चक्रधर ने कहा।

कांता बोली, 'आपके पास जो कुछ भी है—जमीन-जायदाद, धन-सम्पत्ति, रुपया-पैसा—वह सब मेरे पुत्र राजेन्द्र के नाम ही आपको

लिखकर देना पड़ेगा। इसकी लिखा-पढ़ी आज ही राजेन्द्र के नाम हो जाना चाहिए।'

चक्रधर मानो आकाश से गिरे। आश्चर्य में भरकर बोले, 'कांता यह सब मैं क्या सुन रहा हूँ मैं ? क्या तुम........

बीच ही में काँता चिल्ला पड़ी, 'मैं जो कुछ कह रही हूँ ठीक कह रही हूँ। क्या आप अपना वचन पूरा करेंगे ?'

चक्रधर को तो मानो काठ सा मार गया था। वे इस बात की गम्भीरता का अनुमान ही न कर पा रहे थे।

'और.....' धीरे से उनके मुंह से निकला।

काँता ओंठ चबाती हुई बोली, 'और राजीवलोचन को आज ही हमारा घर छोड़कर सदा के लिये चला जाना पड़ेगा। आज के बाद वे फिर कभी इस घर में पैर न धर सकेंगे।'

चक्रधर को मूर्छा सी आ रही थी। काँता कहने लगी, 'अब बनने लगे न ? मैं तो जानती हूँ कि कह कर निभाने वाले कुछ दूसरे ही होते हैं।'

चक्रधर बेहोश होकर गिर पड़े। बाहर खड़े हुए नौकर-नौकरानियों ने उन्हें उठा कर पलंग पर लिटाया। नंदा और चित्रा भी दौड़ कर उसी कक्ष में आ गईं। सारी हवेली में दौड़-धूप मच गई। राजेन्द्र बाहर गया हुआ था। अन्य तीनों भाई दौड़ कर पिता को देखने आ पहुंचे।

राजीव ने पिता के सिर पर हाथ फेरते हुये कांता से कहा, 'ऐसी क्या बात हो गई छोटी मां ? अभी थोड़ी देर पहिले तो पिताजी भले-चंगे थे ?'

काँता कुछ बोली नहीं। राजीव ने फिर कहा, 'यदि स्वास्थ्य ठीक न हो तो मैं डाक्टर को बुलवाऊं ? आखिर पिताजी को हुआ क्या है ?'

काँता फिर भी चुप रही। चक्रधर को अभी तक होश न आया था।

राजीव उठ कर खड़े हुये और बगल वाले कक्ष में चले गये। काँता धीरे से उठी और उनके पीछे-पीछे उसी कक्ष में चली गई।

*

पांच

राजीव ने सरल भाव से मुसकुराकर कहा, 'यह कौन बड़ी बात है छोटी मां ? पिताजी का तो बहुत जल्द घबड़ा जाने का स्वभाव सा है। सम्पत्ति मेरे पास रही वैसे ही राजेन्द्र के पास। तुम क्यों चिन्ता करती हो ? मैं सब ठीक कर दूंगा।'

काँता से लज्जा से गड़ी जा रही थी किन्तु निर्लज्जों की भांति मुसकराकर बोली, 'मैं जानती हूँ कि तुम पिता की आज्ञा कभी न टाल सकोगे। अब तुम जो ठीक समझो वह करो।'

राजीव ने खड़े होकर कहा, 'मैं अभी वकील के यहां जा रहा हूँ आज ही सब लिख-पढ़ कर ठीक करा दूंगा। जो कुछ तुम पिताजी से चाहती हो वह अवश्य ही पूरा होगा।'

कह कर राजीव जाने लगे, किन्तु शीघ्र ही लौट कर फिर कहा, ''आपकी आज्ञानुसार मैं कल ही इस घर को छोड़ कर चला जाऊंगा। आपको किसी प्रकार का कष्ट न होने दूंगा।'

कांता नीचा सिर किये बैठी रही ।

राजीव चले गये ।

× × ×

उसी दिन रात्रि में राजीव ने वकील से मिल कर चक्रधर का वसीयतनामा तैयार कर दिया । उसके द्वारा सारी सम्पत्ति राजेन्द्र के नाम लिख दी गई थी । किसी अन्य भाई को एक धेला भी न दिया गया था ।

पं० चक्रधर अवस्थी रात भर बेहोश पड़े रहे । कभी कभी उनके मुंह से एक 'कराह' सी निकल जाती थी । डाक्टरों के प्रयत्न से सवेरे उन्हें होश आया । उन्होंने फौरन राजीव को बुला भेजा ।

राजीव तैयार होकर पिता के कक्ष की ओर आ ही रहा था । उसके साथ में वकील थे और था वसीयतनामा ।

आते ही राजीव ने पिता के सिर पर हाथ फेरते हुये कहा, 'अब कैसा जी है आपका ।'

चक्रधर के नेत्रों से अश्रु-धारा वह चली । साँत्वना के स्वर में राजीव ने कहा, 'इतनी छोटी सी बात के लिये आप इतना अधिक दुखी क्यों हैं दादा ? मेरे लिये तो आपका स्वास्थ्य ही सब कुछ है ।

चक्रधर चुप रहे ।

राजीव का संकेत पाकर वकील ने वसीयतनामा निकाल कर चक्रधर की ओर बढ़ा दिया ।

चक्रधर ने आँखें फाड़कर कहा, 'यह सब क्या है राजीव ?'

राजीव ने धीरे से कहा, 'मैंने सब कुछ पढ़ लिया है और समझ लिया है । आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें, केवल इस पर हस्ताक्षर कर दें ।'

चक्रधर ने कांपते हाथों से वसीयतनामा लेकर पढ़ा। उसे एक ओर रख कर वे चिन्ता में विमग्न हो गये।

राजीव ने जेब से कलम निकाल कर पिता के हाथ में थमा दिया और वसीयतनामा उनके सामने रखते हुये कहा, 'आप निस्संकोच भाव से इस पर अपने हस्ताक्षर कर दीजिये। आपके वचनों की तो लाज रखनी ही पड़ेगी।'

चक्रधर ने क्षण भर सोचा और फिर इस वसीयतनामे पर हस्ताक्षर कर दिये। राजीव की सलाह से उस वसीयतनामे पर राजीव, नंदा, चित्रा व चंद्रनाथ और निशानाथ ने भी हस्ताक्षर कर दिये।

राजीव ने वसीयतनामा लिया और रजिस्ट्री के लिये वकील के हवाले कर दिया। उस वसीयतनामे की एक प्रतिलिपि उन्होंने काँता के चरणों पर ले जाकर रख दी।

काँता ने लज्जा से सिर झुका लिया।

बस, अब राजीव को घर छोड़ने की तैयारी करनी थी। पुनीता को तो साथ जाना निश्चित था, जब निशानाथ ने यह सब कुछ सुना वे क्रोध से उबल पड़ा।

वह राजीव के पास पहुँच कर बोला, 'यह तुमने क्या किया दादा। छोटी माँ कौन होती हैं हमको हमारे अधिकार से वंचित करने वाली ?'

राजीव ने उसे सावधानी से समझाते हुये कहा, 'यह छोटी मां की बात नहीं है निशा। यहाँ पर पिताजी के वचन का प्रश्न था। किन्तु तुम इतने चिंतित क्यों हो ? राजेन्द्र का कितना अच्छा स्वभाव है वह तो तुम जानते ही हो। तुम्हें किसी भी प्रकार का कष्ट न होगा।

कुछ बिगड़ कर निशानाथ ने कहा, 'यह खूब कही आपने ? अब क्या राजेन्द्र के टुकड़ों पर अपना जीवन-यापन करना पड़ेगा ? और आप.......'

राजीव ने कहा, 'अब मुझे एक क्षण भर भी इस घर में रहने का

अधिकार नहीं रह गया है। मैं तो आज ही जा रहा हूँ।'

क्षण भर रुक कर निशानाथ ने दृढ़ता के स्वर में कहा, 'मै तो आपके साथ ही रहूंगा दादा। मेरी भी अब इस घर में एक क्षण भर गुजर न होगी।'

विस्मय की मुद्रा में राजीव ने कहा, 'तुम कहाँ चलोगे मेरे साथ भटकने? तुम्हें राजेन्द्र के साथ ही रहना चाहिये निशानाथ। इधर पिताजी का भी स्वास्थ्य ठीक नहीं है।

निशानाथ ने कहा, 'जिस घर में न्याय और अन्याय में कोई भेद-विभेद नहीं रह गया है उस घर में मैं रह कर करूंगा भी क्या? मेरा आपके ही साथ रहना निश्चित है। मै इस घर में बिना आपके किसी दशा में भी न रह सकूंगा।'

राजीव चुप हो गये।

निशानाथ धीरे से अपने कक्ष की ओर चले गये।

राजीव, निशानाथ और पुनीता ने जाने की तैयारी कर दी। नंदा और चित्रा चुप थीं। वे राजीव के स्वभाव को जानती थीं। पिता के वचनों की रक्षा के लिये जो त्याग राजीव ने किया था वह सब पर भलीभाँति विदित था।

एकान्त में अवसर पाकर चित्रा ने नंदा से कहा, 'इस त्याग का महत्व तो मेरी समझ में आया नहीं जीजी। यह तो अन्याय के आगे सिर झुकाना हुआ।

कुछ सोच कर नंदा ने कहा, 'न्याय और अन्याय की बात राजीव खूब समझता है चित्रा। मेरा विश्वास है कि वह जीवन में कोई भी कार्य गलत नहीं कर सकता।'

चित्रा ने कहा, 'यह तो ठीक है, किन्तु क्या यह सब उचित हुआ? उन्हें भी तो कुछ सोचना चाहिए था? क्या हम दोनों के प्रति उनका यह अन्याय नहीं है?'

गंभीर वाणी में नंदा ने कहा, 'न्याय और अन्याय पर विचार करना हमारा कार्य नहीं है। मैं तो यह नहीं जानती हूँ कि राजीव ने जो भी किया है समझ-सोचकर किया होगा। वे अपने पिता की कोई भी बात टाल नहीं सकते।

चित्रा चुप हो गई।

दोपहर को ही राजीव, पुनीता और निशानाथ के साथ किसी अज्ञात स्थान की ओर चले गये।

और—

संध्या को ही चक्रधर को राजीव के चले जाने का समाचार मिला।

उनके मुँह से पीड़ा के स्वर में निकला 'आह राजीव……!'

उनके हृदय की गति रुक गई। वे इस संसार को छोड़कर चले गये।

हवेली में कोलाहल मच गया।

*

छः

स्वर्णपुर के राजा पं० विद्यासागर शर्मा उन अनोखे और भाग्यशाली व्यक्तियों में से थे जिन पर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की ही समान रूप से कृपा रहती है। राजा विद्यासागर के अधिकार में कितना धन, कितना वैभव तथा कितनी शक्ति है इसका अनुमान लगा सकना कठिन ही नहीं असम्भव था। मणि-मुक्ताओं से खजाने भरे पड़े हुये थे। स्वर्ण की कोई कदर राजा साहब के यहाँ न थी। राजा विद्यासागर स्वर्ण के बर्तनों में भोजन करते थे, और वे बर्तन भोजन के बाद ही निर्धनों में बाँट दिये जाते थे।

राजा विद्यासागर स्वयं धुरंधर पंडित थे। ऐसी कोई विद्या न थी जिसका उन्हें ज्ञान न हो। शास्त्रार्थ में वे बड़े-बड़े शास्त्रियों को निरुत्तर कर देते थे। नीति और धर्म-ग्रथों के वे आचार्य थे। उनकी राज-सभा में प्रकांड पंडित ही टिक सकता था। जब वे दरबार में आकर बैठते थे बड़े-बड़ों के हृदय दहल उठते थे ? न जाने किस समय उनकी क्या आज्ञा

हो जाय ? उनकी शक्ति, वैभव विद्या और दबदबे के आगे बड़े-बड़े शूरमा नत-मस्तक रहते थे ।

किन्तु उनमें कुछ दोष भी थे । अहंकार, क्रोध, मद और ऐश्वर्य ने उन्हें उन्मत्त बना दिया था । यौवनावस्था पार करने के बाद भी उनकी कामुकता कभी-कभी अतिक्रमण की सीमा पार कर जाती थी । स्त्री उनके जीवन की सबसे बड़ी दुर्बलता थी । पुत्र-पौत्रादि के होते हुये भी उनकी इस दुश्चरित्रता में किसी प्रकार की कमी न आ सकी थी । जिस स्त्री पर वे मोहित हो जाते उसे उनके रनिवास में आने से दुनियाँ की कोई भी शक्ति रोक न सकती थी । उनकी किसी भी कार्यवाही पर किसी को बोलने या टीका-टिप्पणी करने का भी अधिकार न था ।

विद्यासागर का एक छोटा भाई था और एक छोटी बहिन । भाई का नाम था रुद्रसागर और बहिन का उर्वशी ।

रुद्रसागर का स्वभाव भाई से बहुत कुछ मिलता जुलता था । भाई की छत्र-छाया में रहकर पर-पीड़न में उसे आनन्द आता था । रियासत की जनता उससे बहुत डरती थी ।

उर्वशी जवान और बाल-विधवा थी । युवती और पूर्ण सुन्दरी होने पर भी लोगों की दृष्टि में वह संयमशील थी । कभी-कभी वह महीनों के लिये निकल जाती थी ।

प्रजा-पीड़न इस रियासत के शासकों का लक्ष्य रहता था ! फिर भी कोई इस अत्याचार के विरुद्ध जबान न खोल सकता था । राज्य के विरुद्ध बोलने की किसी को भी आजादी न थी । किसी ने जिह्वा खोली नहीं कि उसका अस्तित्व समाप्त हुआ ।

राजा विद्यासागर का जेष्ठ पुत्र इंद्रसैन अपने पिता के ही अनुरूप था । उसमें केवल विशेषता यह थी कि वह सचरित्र था । उसकी स्त्री

सुनयना एक पतिव्रता स्त्री थी और इद्रसैन उससे प्रेम करता था।

+ + +

एक लम्बी सांस छोड़ते हुये राजीव ने कहा, 'यह तो प्रजा-पीड़न की एक दर्द भरी कहानी है।'

सामने बैठे हुये एक संभ्रान्त से व्यक्ति ने कहा, 'आप यहां अभी हाल ही में आकर बसे है। इस प्रकार के अत्याचार यहाँ के लिये नये नहीं है अभी थोड़े दिन हुये इस रियासत के प्रतिष्ठित सेठ सागरमल की जवान और सुन्दरी बहू को राजा साहब के एक संबंधी ने जबरदस्ती उठवा कर अपने घर में डाल लिया। सेठ सागरमल ने दरबार में शिकायत की तो उसका घर-बार, धन-सम्पत्ति सभी कुछ लूट लिया गया। गया उसे राज-कोष में लमा कर दिया।

क्रोध से राजीव के नेत्र लाल हो गये। वे बोले, 'और तुम लोग इस अत्याचार को आंख बन्द कर के सह लेते हो।

उस व्यक्ति ने विश्वास लेकर कहा, 'और फिर उपाय ही क्या है ? हम लोग निशस्त्र और अशक्त हैं। इतनी बड़ी शक्ति से कैसे लोहा ले सकते हैं।'

राजीव ने दृढ़ता के स्वर में कहा, 'अन्याय का प्रतिकार होना ही चाहिये। यह राज्य तो दानवता पर आधारित है। इसका विनाश तो होकर ही रहेगा। आखिर सहन-शक्ति की एक सीमा होती है। मुझे अभी तक आपका परिचय नहीं मिला।'

संभ्रान्त व्यक्ति ने किंचित मुस्करा कर कहा 'मैं राजमहल में ही रहता हूँ तथा राजा साहब का रिश्ते में छोटा भाई लगता हूं। मेरा नाम दयासागर है।'

राजीव ने आश्चर्य की दृष्टि से दयासागर की ओर देखते हुये कहा आप राज-परिवार के व्यक्ति होते हुये भी राजा के विरुद्ध क्यों है ?

दयासागर ने कहा 'मैं सदाचार, सत्य और न्याय में विश्वास रखता

हूँ। राजमहल अब पाप-महल हो रहा है। मेरा जी घुट रहा है। मैं इस कैद से छुटकारा पाने का इच्छुक हूँ। आप कोई उपाय बतलाइये।'

कुछ सोच कर राजीव ने कहा 'मैं भी अपने परिवार द्वारा ही प्रती ड़ित एक प्राणी हूँ। मैंने घर त्याग कर कर्तव्य की रक्षा की है। यहाँ आकर मैं शाँतिपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहा हूँ, जन-कष्ट सुनकर मुझ रहा नहीं जाता आप ही बतलाइये कि मैं इस राज्य की प्रजा के उद्धा के लिये क्या कर सकता हूँ ?'

दयासागर ने कहा 'आप विद्वान, गुणवान तथा नीतिज्ञ हैं। अभी आपको थोड़े ही दिन यहाँ निवास करते हुये हैं, किन्तु इतने ही अल्प काल में आपने जो ख्याति यहाँ के निवासियों में प्राप्त कर ली है व मैं स्वयं समझ रहा हूँ।'

राजीव कह पड़े 'पाप की नाव डूब कर ही रहती है दयासागर जी राजा के पाप ही उसे ले डूबेंगे। मैं तो अन्याय का सदा ही खुल क विरोध करूँगा। तड़पती मानवता को दानवता से त्राण मिलकर रहेग ऐसा मेरा विश्वास है।'

गद्गद होकर दयासागर ने कहा 'तो अब आप मुझको अपनी ह शरण में समझिये। मैं जो कुछ आपकी सहायता कर सकूँगा करूँगा।

अत्यन्त गंभीर होकर राजीव ने कहा 'जिस राजा के राज्य में प्रज दुखी रहती है वह बध करने योग्य होता है। यदि ऐसे राजा से त्रा पाना है तो प्रजा को संगठित होना पड़ेगा।'

दयासागर ने कहा, 'किन्तु मुझे आप और आपके परिवार की बड़ चिन्ता है। यह मूर्ख, अन्यायी और पापी राजा आपको सब प्रकार से हा पहुंचाने की चेष्टा करेगा। आपको उससे सतर्क रहना होगा।'

हँस कर राजीव ने कहा 'मेरे लिये आप चिन्ता न कीजिये दयासाग जी। मैं स्वयं अपनी रक्षा कर लूंगा। मैं आज से ही यहाँ की प्रजा संगठन का बीड़ा उठाता हूँ। मैं इस मूर्ख राजा से नहीं डरता।'

किन्तु दयासागर जानता था कि राजा कितना बड़ा अत्याचारी है। वे चुप रहे।

राजीव ने कहा, 'सम्मिलित शक्ति से क्या नहीं हो सकता। इस राजा के अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुँच चुके हैं। इसका विनाश अवश्यम्भावी है।'

थोड़ी देर में दयासागर चले गये।

राजा विद्यासागर के सम्बन्ध में बात करते हुये एक दिन निशानाथ ने कहा, 'आप स्वयं विद्वान हैं दादा, मेरा विचार है कि इस अत्याचारी राजा के राज्य में रहना खतरे से खाली नहीं है। हम लोगों को कहीं और चलकर रहना चाहिये।'

राजीव ने गम्भीर वाणी में कहा 'अन्याय का प्रतिकार होना चाहिये निशानाथ। हमने अपने जीवन का लक्ष्य जब जन-कल्याण ही बना लिया है तो फिर इस राजा से डरना क्या? हमसे टकरा कर वह अपनी ही हानि करेगा।'

निशानाथ ने कहा, 'आप ठीक कह रहे हैं दादा, किन्तु जान-बूझ कर—'

राजीव दृढ़ता के स्वर में बोल उठे, 'यह कायरता है निशानाथ। यहाँ के लोगों ने हमको प्रश्रय दिया है। हमारा आदर किया है। अब इन्हें कैसे छोड़ सकते हैं।'

निशानाथ चुप हो गये। राजीव कहते गये, 'प्रजा के संगठन से राजकीय अत्याचार सदा से टकरा कर चूर-चूर होते आये हैं। इस अत्याचारी राजा के अत्याचार से आज सारी प्रजा पीड़ित है। हम को प्रजा का साथ देना चाहिये। रह गया हमारी रोटी का प्रश्न, सो हम धरती की सेवा करके ही प्राप्त कर लेंगे। इस कार्य में भी यहाँ के लोगों ने हमारी कितनी सहायता की है। फल-फूल से हमारा यह छोटा सा उपवन कैसा लहलहा उठा है। धरती हमको क्या नहीं दे सकती? हम

अनाज का उत्पादन करेंगे। हमारा यह उपवन हमको फल-फूल देगा हमको जीवन में किसी बात की कमी न रहेगी।'

निशानाथ भाई के मुँह की ओर देखते रह गये राजीव ने फि कहा, 'हमारा जीवन स्वच्छ, सरल और सीधा-सादा होना चाहिये। जो अपनी मर्यादा पर स्थिर रहता है उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता न्याय के लिये लड़ने वाले की सदा विजय होती है।'

निशानाथ ने कहा, 'आप ठीक कहते हैं दादा। मैं तो एक आज्ञा कारी सेवक की भाँति सदा आपका अनुकरण और अनुसरण करूँगा।'

बातें यहीं समाप्त हो गई। संध्या का समय था। निशाना टहलते हुये नदी-तट की ओर चल दिये।

बसंत-ऋतु के स्वागतार्थ प्रकृति सर्वांग रूप से सजी-बजी थिर रही थी। प्रत्येक वृक्ष पर कलियाँ मंद-मुस्कान से सौरभ छिड़क र थीं। मलियानिल मन में मस्ती जगा रहा था। वन की विलासम वायु हृदय में निराला सा स्पंदन उत्पन्न करके वातावरण को धन्य ब रही थी। स्थान की नीरवता एक विचित्रता का आभास दे रही थी।

निशानाथ नदी की ओर बढ़ते चले गये। आज उनका मन इ सुखद वातावरण में नदी की लोल लहरों से कुछ देर खेलना चाहता थ वे नदी-तट पर पड़े हुए एक शिला-खंड पर जाकर बैठ गए।

नदी की लहरों में भी आज एक विचित्र प्रकार की मादकता थी

झुटपुटापन बढ़ता जा रहा था। तभी निशानाथ ने देखा कि सुन्दर रमणी धीरे-धीरे पग धरती हुई नदी की ओर चली आ रही है उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो सुन्दरी की यौवन-सुगन्धि से सारा वाताव महक उठा हो।

सुन्दरी निकट आती गई। निशानाथ चुपचाप बैठा उसकी रूप-सु का पान कर रहा था। एक सुन्दर नवयुवक को यों ही अनमयवस्क भ से बैठा देखकर वह ठिठकी।

दोनों ने एक दूसरे को अपरिचित भाव से देखा।

न जाने क्यों सुन्दरी के होठों पर हलकी-सी मुस्कान दौड़ गई। निशानाथ भी अपने को न रोक सका।

'आप कौन ?' वीणा-विनिंदित स्वर में सुन्दरी कुछ नेत्रों को चढ़ा कर बोली।

निशानाथ एक टक उसके मुँह की ओर देखता रह गया।

पास ही में एक छोटा सा शिला-खंड था। सुन्दरी दोनों हथेलियों पर ठोढ़ी रख कर धीरे से बैठ गई।

निशानाथ उठ कर खड़ा हो गया।

अब सुन्दरी भी खड़ी हो गई थी। वह धीरे से बोली, 'आप परदेशी हैं ?'

'हाँ' निशानाथ के मुँह से निकला।

'हूँ' कहकर सुन्दरी चुप हो गई।

'और आप ?' निशानाथ के मुँह मे निकला।'

सुन्दरी मुस्करा उठी। बोली, 'मैं इसी रियासत की रहने वाली हूँ। आप यहाँ कहां रहते हैं ?'

निशानाथ ने पता बता दिया।

सुन्दरी कहने लगी, 'आप सज्जन प्रतीत होते हैं। सुन्दर भी है। क्या आप मेरी मित्रता पसन्द करेंगे ?'

'एक नवयुवक और एक नवयुवती की मित्रता ? क्या यह संभव है ?' निशानाथ के मुँह से निकल गया।

सुन्दरी खिलखिलाकर हँस पड़ी।

निशानाथ आश्चर्य के साथ उसके मुँह की ओर देखने लगा।

सुन्दरी कहने लगी, 'आप भी खूब हैं। क्या आपको मेरी मित्रता पर विश्वास नहीं है ?'

निशानाथ बोला, 'विश्वास क्यों नहीं है. किन्तु......किन्तु मेरे साथ मेरे बड़े भाई हैं, भाभी हैं।'

बीच ही में सुन्दरी बोल उठी, 'तो क्या मुझसे मित्रता करने के लिये आपको अपने भाई से पूछना पड़ेगा ?'

'हाँ, मैं बिना उनकी आज्ञा के कोई कार्य नहीं करता।' निशानाथ ने उत्तर दिया।

'ओह, यह बात है।' कह कर सुन्दरी चुप हो गई।

थोड़ी देर चुप रह कर निशानाथ बोला 'आप यदि—'

'हाँ-हाँ, आप लोग भले आदमी प्रतीत होते हैं। मैं आपके भाई से अवश्य ही मिलूँगी। 'सुन्दरी ने दृढ़ता के स्वर में कहा।'

निशानाथ चुपचाप खड़ा रहा।

सुन्दरी बोली, 'तो फिर चलिए। अधिक दूर तो नहीं है ?'

'क्या अभी ?' निशानाथ ने पूछा।

'हाँ-हाँ' कह कर सुन्दरी आगे बढ़ने को उद्यत हुई।

निशानाथ पीछे-पीछे चला। मार्ग में सुन्दरी ने कहा, 'देखिए, कितनी मस्ती है आज के वातावरण में ? विभिन्न प्रकार के पुष्प तथा उनकी समन्वित सुरभि शरीर में विलासमयी प्रकृतियों को दोलातमान कर रही हैं। है न ? आप क्या अनुभव करते हैं ?'

निशानाथ भी मस्ती में डोल रहा था। बोला, 'ठीक कह रही हैं आप ?'

युवती उसके बहुत ही निकट आकर बोली, 'आपके ऊपर इस ऋतु और वातावरण का प्रभाव नहीं पड़ रहा है ? आप इतना चुप क्यों हैं।'

निशानाथ जैसे निद्रा से जागे हों। बोले, नहीं तो...मैं...'

सुन्दरी खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली, 'आप कुछ अनुभव-हीन से प्रतीत होते हैं। क्या इस समय, इस वातावरण में, इस मस्ती में मेरी कोई आवश्यकता नहीं समझते।'

अब निशानाथ संभल चुके थे। बोले, 'मैं विषय-वासना, नारी और ऐश्वर्य से दूर ही रहता हूँ। आप क्षमा करें, मैं इस विषय में नितान्त अल्हड़ हूँ।'

मन की निराशा मन ही में दबा कर सुन्दरी बोली, 'और आपके भाई ?'

निशानाथ बोल उठे, 'हाँ-हाँ, आप चल कर उनसे बात करें। वे···वे—'

सुन्दरी फिर खिलखिलाकर हँस पड़ी। निशानाथ उसकी ओर गौर से देखने लगे। विचित्र स्त्री है ? स्त्री है या अप्सरा ? इतनी सुन्दर, इतनी निस्संकोच ? आखिर इसका अभिप्राय क्या है ?

सुन्दरी कहने लगी, 'आप जैसे वेलौस और अनुभव-हीन युवक ही मुझे बड़े पसन्द आते हैं। आपसे एक पुरुषोचित सौंदर्य है।'

कहते-कहते उसने निशानाथ का धीरे से हाथ पकड़ लिया। अपना हाथ धीरे से छुड़ाते हुए निशानाथ ने कहा, 'मुझे क्षमा करें आप। आप मेरे विषय में जो कुछ सोच रही हैं वह मैं नहीं हूँ। आप नारी-कुल में श्रेष्ठ हैं। मैं आपका सम्मान करता हूँ।

सुन्दरी अब चुप रही। कदाचित् यह उसके सौंदर्य का अपमान था।

अब निशानाथ का घर निकट आ गया था। राजीव बाहर ही टहल रहे थे। निशानाथ को एक सुन्दर युवती के साथ आते देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

राजीव को निशानाथ से भी अधिक आकर्षक पाकर सुन्दरी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने शीघ्र ही राजीव के निकट जाकर प्रणाम किया।

युवती ने क्षण भर बाद ही कहा, 'आप वीर हैं, सुन्दर हैं, नवयुवक हैं। मैं आपको बहुत पसंद करती हूँ।'

राजीव ने किंचित आश्चर्य में कहा, 'आप ?' 'आप क्या चाहती हैं, मुझसे ? आप कौन हैं ?'

मुसकराकर युवती ने कहा, 'मैं स्त्री हूँ, युवती हूँ, सुन्दरी हूँ। आपके निकट आना चाहती हूँ ।'

राजीव ने कहा, 'आप युवती हैं, यह बड़े हर्ष की बात है और आप सुन्दरी हैं यह देख कर मैं धन्य हुआ । आपका अभिप्राय क्या है ?

सुन्दरी राजीव के अत्यन्त निकट आकर बोली, 'मैं आपसे विवाह करना चाहती हैं। मैं आप पर मुग्ध हूँ।'

राजीव को कुछ हँसी आ गई। वे बोले, 'आप कौन हैं ? मैं तो आपको जानता नहीं। आप पहिले अपना परिचय तो दें ।'

निशानाथ को यह बात सुनकर कुछ क्रोध आ चला था। बाहर की आहट सुनकर पुनीता भी वहाँ आ गई थी ।

अपने समान ही दूसरी सुन्दरी को दोनों भाइयों के बीच में मौजूद देख युवती कुछ खिसिया-सी गई थी। राजीव से किंचित रोष के साथ बोली, 'सारा संसार मुझे जानता है। मेरी कृपा का भिक्षुक है। आप मुझे नहीं जानते ? मैं महाराजाधिराज विद्यासागर शर्मा की छोटी बहिन तथा इस स्वर्णपुर राज्य की राजकुमारी उर्वशी हूँ।'

राजीव और निशानाथ गौर से उसके मुँह की ओर देखने लगे।

उर्वशी कहने लगी, 'यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम लोग मुझे पसन्द आ गये हो।'

कुछ मुस्कराकर राजीव ने कहा, 'किन्तु मैं तो एक विवाहित पुरुष हूँ राजकुमारी जी। मेरी स्त्री (पुनीता की ओर संकेत करके) मेरे साथ है। मैं यदि विवाहित न होता तो आपके प्रस्ताव पर विचार कर सकता था।'

युवती ने निराश होकर निशानाथ की ओर देखा। राजा विद्यासागर की बहिन जानकर निशानाथ के हृदय में उसके प्रति एक घृणा सी उत्पन्न हो गई थी। वे झट बोल उठे, 'मुझे तो क्षमा ही कीजिए

देवी जी। मैं तो आपको पसन्द ही नहीं करता। मुझे आप और आपके अत्याचारी भाई दोनों से ही घृणा है।'

उर्वशी की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वह स्वर को किंचित भयानक बनाती हुई बोली, 'मूर्खो, अभी तुम मेरी शक्ति को नहीं जानते। राजा विद्यासागर से अभी तुम्हारा पाला नहीं पड़ा है। तुम्हें इस औरत की सुन्दरता पर गर्व है तो मैं अभी.......'

उर्वशी ने कमर से कृपाण निकाल ली और जल्दी से पुनीता की ओर झपटी। पुनीता चीख उठी।

पलक मारते ही निशानाथ ने उर्वशी के आक्रमणकारी हाथ को कसकर पकड़ लिया। वे चिल्लाकर बोले, 'शैतान कहीं की!'

और उन्होंने कृपाण छीन ली।

उर्वशी दाँत पीसती हुई बोली, 'कच्चा ही चबा जाऊँगी। तू मुझे समझता ही क्या है?'

निशानाथ उसके प्रलाप पर मुस्करा दिये। उर्वशी क्रोध से पागल हो रही थी। वह कृपाण छीनने के लिए निशानाथ के चिपट गई। निशानाथ ने उसमें अपूर्व बल अनुभव किया। इस छीना-झपटी में उर्वशी बुरी तरह घायल हो गई। उसके हाथ, नाक और कान से रक्त बहने लगा। वह अलग खड़ी होकर हाँफने लगी।

राजीव ने गंभीर वाणी में कहा, 'क्षमा करना राजकुमारी, इसमें दोष आपका ही है। हम लोग बिना कारण के किसी को तंग नहीं करते, किन्तु यदि कोई हमको ललकारता है तो वह चाहे काल ही क्यों न हो, हम उससे लड़ते अवश्य हैं।'

दाँत पीसती हुई उर्वशी बोली, 'तुम्हें शीघ्र ही इसका बदला मिलेगा। तुम अभी राजा विद्यासागर की शक्ति और स्वभाव को जानते नहीं।'

कहकर दाँत किटकिटाती हुई वायु के से प्रचंड वेग से उर्वशी राजमहल की ओर चल दी।

सात

प्रजा-पीड़न के उन्मूलन के लिए राजीव ने निम्न श्रेणी के लोगों का संगठन प्रारंभ किया। इस स्वर्णपुर राज्य में निम्न श्रेणी के लोगों पर जो रियासत की ओर से अत्याचार किये जाते थे उन्हें देखकर बर्बरता भी लज्जा से नत हो जाती थी। उन्हें न तो अच्छे कपड़े ही पहिनने का अधिकार था और न अच्छा भोजन करने का ही। इस अपराध पर राज्य की ओर से दंड दिया जाता था। उनके लिए धन संचित करना भी एक अक्षम्य अपराध था। उनकी स्त्रियों की कोई इज्जत न थी। राज्य का प्रत्येक अधिकारी स्वेच्छा से उनका उपभोग कर सकता था। उन्हें दंड देने के प्रकार भी बड़े ही अमानुषिक थे। जरा से अपराध पर उन्हें दिन-दिन भर के लिए उल्टा लटका दिया जाता था। आज्ञा-उलंघन के अपराध में उन्हें कोड़ों की मार से बुरी तरह घायल कर दिया जाता था। इस पर भी उन्हें अपनी जुबान खोलने की आजादी न थी। श्वेत कपड़े पहिनने के अपराध में उन्हें

कारागार में डाल दिया जाता था। कारागार की यातनाओं से वे अधमरे होकर बाहर निकलते थे। इस पर भी उन्हें अपनी कमाई के तीन-चौथाई भाग को कर-स्वरूप राजा को दे देना पड़ता था।

ये अत्याचार दिन प्रति दिन बढ़ते ही चले जा रहे थे। बात की बात पर या अत्यन्त साधारण अपराध पर अपराधी को कीड़े की भाँति मसल दिया जाता था।

दोपहर का समय था और लू-लपट के दिन थे। एक गरीब चरवाहा एक गली में पड़ा सो रहा था। दुर्भाग्यवश एक राज-कर्मचारी उधर से निकला। चरवाहे ने अपने वदन को सिकोड़ कर रास्ता दे दिया। इस पर वह कर्मचारी बोला, 'नीच. तूने मुझे छू क्यों लिया ?'

वह गिड़गिड़ाकर बोली, 'नहीं सरकार, मैं तो आपसे बहुत दूर था।'

कर्मचारी चिल्ला कर बोला, 'तू झूठ बोलता है। तूने मुझे अवश्य ही छू लिया है।'

चरवाहे की मृत्यु सिर पर नाचती दिखलाई दी। वह धरती पर साष्टांग दंडवत् करता हुआ वोला, 'अन्नदाता, यदि अपराध हुआ हो क्षमा करें।'

कर्मचारी मुँह बना कर चला गया। सैकड़ों लोगों ने अपनी आँख से इस ज्यादती को देखा किन्तु किसी का साहस बोलने का न हुआ।

थोड़ी देर में राज कर्मचारी पुलिस लेकर आ पहुँचा। चरवाहे को जीवित ही धरती में गाड़ देने की आज्ञा हुई। लोग भय से काँप गये।

किन्तु अत्याचार की भी सीमा होती है। लोग प्रतिकार के लिये तैयार होने लगे। किन्तु नेतृत्व कौन करे ? कुछ लोग छिपकर महाराज के छोटे भाई दयासागर के पास मशावरे के लिये पहुंचे।

सारी कथा सुन कर दयासागर का हृदय द्रवित हो उठा, 'और वह चरवाहा……'

एक प्रतिनिधि ने कहा, 'उसे पुलिस पकड़कर ले गई है। कल

दोपहर को उसे सार्वजनिक रूप से धरती में गाड़ देने की आज्ञा हुई है।'

दयासागर ने कहा, 'किन्तु हो क्या सकता है। तुम लोगों के पास संगठित शक्ति कहाँ है ?'

वे लोग बोले, 'इस बार हम सब मर-मिटने को तैयार हैं। आप हमारे यदि पथ-प्रदर्शन बनें तो·······'

दोनों कानों पर हाथ रखते हुए दयासागर ने कहा, 'ना-बाबा, भाई से लोहा लेने की शक्ति मेरे पास नहीं है। वह पापी और अत्याचारी होते हुए भी शक्तिशाली है।'

प्रतिनिधियों का अगुआ इस समय बड़ी उत्तेजना में था। बोला, 'किन्तु इस बार हम लोग प्राण देने के लिए तुल गये हैं। हमारे पास दस हजार व्यक्तियों का बल है। किन्तु हम मूढ़ हैं, हमारे नेतृत्व के लिए एक सामर्थशाली व्यक्ति की आवश्यकता है।'

कुछ सोचकर दयासागर ने कहा, 'राज्य के उत्तर की ओर कुछ दिनों से दो जवान भाई अपनी स्त्री के साथ आकर रहने लगे हैं। वीर, धर्मवान और अनाथ-हितैषी हैं। वे यहाँ के प्रजा-पीड़ित से दुखी भी हैं। यदि तुम लोग उनसे मिल कर अपनी विपत्ति कथा सुनाओ तो···'

अगुआ, जिसका नाम हरिदास था, बोल उठा, 'किन्तु उनसे हमारा किसी प्रकार का परिचय जो नहीं है।'

दयासागर ने कहा, 'परिचय की क्या आवश्यकता है ? तुम मेरा नाम लेकर उनसे बात कर सकते हो।'

वे लोग कुछ संकोच में पड़ गये।

दयासागर कहने लगे, 'उनसे अधिक उपयुक्त मार्ग-प्रदर्शन तुम्हें मिल ही नहीं सकता। तुम अभी जाकर उनसे भेंट करो। देर करने से, फिर उस चरवाहे के प्राण न बच सकेंगे।

वे लोग चले गये।

उनके जाने के पश्चात् दयासागर के मुँह से निकला, 'इस अत्या-

चार का भी कोई ठिकाना है ? मानव को पशु और कीड़े से भी अधिक नगण्य समझा जाता है । हे प्रभो रक्षा करना । इस राज्य का विनाश आवश्यक हो उठा है ।

× × ×

राजीव का मुँह क्रोध से तमतमा उठा था । वे बोले, 'अन्याय का सहन कायरता है । मैं तो अब आप लोगों का मित्र हूँ और जो मित्र के दुःख से दुखी नहीं होता, वह निश्चित रूप से नरक का अधिकारी होता है । मैं आप लोगों की सेवा के लिए प्रस्तुत हूं ।'

हरिदास ने कहा, 'किन्तु हम लोग इस समय क्या करें ? देर करने से व्यर्थ में निरपराध चरवाहे के प्राण चले जाएंगे ।'

कुछ सोचकर राजीव ने कहा, 'बहुत सोच-समझकर आगे कदम बढ़ाना चाहिये । आगे बढ़कर पीछे हटना दुष्परिणाम-मूलक है । यह समझ लो कि तुम लोग एक बहुत बड़ी शक्ति से टक्कर लेने जा रहे हो । इसमें धन और जन की अपार क्षति होगी न जाने कितनों को प्राण से हाथ धोने पड़ेंगे । अत्याचार और दमन से पीस दिये जाओगे ।

हरिदास ने कहा, 'अत्याचार और दमन की चक्की में तो हम पिस रहे ही हैं । इससे अधिक बुरी दशा और हमारी हो ही क्या सकती है ।

गंभीर वाणी में राजीव ने कहा, 'अपने छुटकारे और स्वतन्त्रता के लिए तुम्हें सब कुछ गंवाना पड़ेगा ।'

एक बोल उठा, 'हम प्रस्तुत हैं ।'

दूसरा बोला, 'किन्तु इसका परिणाम क्या होगा ? क्या इस अत्याचार का अन्त हो जायगा ?'

दृढ़ वाणी में राजीव ने कहा, 'निश्चय ही । अन्त में न्याय और सत्य की विजय तो होती ही है । पाप का दुर्ग कब तक खड़ा रहेगा ।

संगठन में ही शक्ति होती है। यदि तुम संगठित रूप से खड़े हो सके, यदि तुम सत्य को अपना लक्ष्य बना सके और यदि पुनीत भावनाओं को लेकर तुमने संघर्ष किया तो यह अत्याचारी राज टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट हो जायगा।'

सभी के मुँह से निकल पड़ा, 'आप ठीक कह रहे हैं।'

हरिदास ने कहा, 'हम अपढ़ और मूढ़ हैं। हमारी गणना कभी मनुष्यों में नहीं की गई। हम चाहते हैं कि आप हमारा नेतृत्व करें। हम आपके संकेत पर अपने प्राणों का बलिदान करेंगे। हम आपके नेतृत्व ही में यह संघर्ष करना चाहते हैं।'

राजीव मौन रहे।

दूसरे नेता मुकुंद ने कहा, 'आप हमको अपनाइये। हमारा उद्धार कीजिए। हम प्रतिज्ञा करते है कि हम जीवन-भर आपके संकेत पर प्राण देने को प्रस्तुत रहेगे।'

कुछ सोचकर राजीव ने कहा, 'मैं प्रस्तुत हूँ। यदि अन्याय के विरुद्ध लड़ना पड़े, तो मैं अकेले ही लड़ने को तैयार हूँ।'

हाथ जोड़ कर हरिदास ने कहा, 'तो फिर हमको क्या करना होगा? चरवाहे के प्राण बचाने के लिए क्या उपाय होगा?'

राजीव ने कहा, 'उसके प्राण-दंड के लिये क्या समय निश्चत किया गया है?'

हरिदास ने कहा, 'कल दोपहर को ठीक बारह बजे।'

राजीव ने कहा, 'उस समय अपने हजारों साथियों के साथ तुम लोग वहाँ पहले से ही एकत्र हो जाओगे। अपने भाषणों द्वारा जनता को खूब उत्तेजित करना होगा। तुम लोग अधिकारियों से चरवाहे को छोड़ देने की प्रार्थना करोगे। यदि वे लोग न छोड़ें तो जनता को उन पर आक्रमण करने का निर्देश देना। हमको कल ही से युद्ध आरम्भ कर देना है।'

सुकंठ बोला, 'सारा कार्य आपके आदेश अनुसार ही होगा। किन्तु……।'

राजीव बोल उठा, 'घबड़ाने की कोई बात नहीं है। निशानाथ तुम्हारे साथ रहेंगे। भय को हृदय से निकाल दो।'

हरिदास ने कहा, 'आपके आदेश से हम आज ही रात से संगठन का बिगुल फूंक देंगे। हम लोग कल सवेरे से ही बीस सहस्त्र से अधिक संख्या में उस मैदान में पहुंच जायेंगे। आपके निर्देश और आशीर्वाद से हमारी अवश्य ही विजय होगी।'

राजीव बोल उठे, 'शाबास। अब तुम लोग जा सकते हो। हम संघर्ष में विजयी होकर इस मूढ़ और अत्याचारी राजा को गद्दी से उतार देंगे तथा उसके धर्मात्मा भाई दयासागर को गद्दी पर बिठला देंगे।'

सब लोग प्रसन्नता से झूम उठे।'

राजीव बोले, 'अन्याय की पराजय होगी। सत्य की जय सदा से होती आई है।'

✱

आठ

और—

सचमुच चरवाहे के प्राण के प्रश्न को लेकर राज्य में एक आन्दोलन खड़ा हो गया। रात भर राज्य में जनता विरोधी नारे लगाती हुई सड़कों पर घूमती रही।

गुप्त रूप से निशानाथ ने भी इस ज्वाला को सुलगाने में सहयोग दिया। जनता का उत्साह देख कर सचमुच ऐसा प्रतीत होता था कि एक ही रात्रि में 'भय' इस राज्य से भाग गया है।

घर घर में लोग अस्त्र-शस्त्रों से लैस होने लगे। छुरी, काँटा बल्लम, तलवार, कृपाण, पत्थर तथा लाठी प्रत्येक व्यक्ति अपने पास रखने की तैयारी करने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कि बड़े भारी युद्ध की तैयारी हो रही है। मालदारों की बस्तियां भय से खाली होने लगीं। राज भक्त लोग प्राण बचा कर भागने लगे। लोगों की समझ में न आया कि आखिर होने क्या जा रहा है ? ऐसी घटना राज्य में

बिल्कुल नई जान पड़ती थी।

पुलिस घबड़ा कर उत्तराधिकारियों के पास पहुँची। अधिकारियों की समझ में ही न आया कि वे परिस्थिति को कैसे काबू में करें। अन्त में महाराज को सूचना दी गई।

इस समाचार के सुनते ही क्रोध से राजा विद्यासागर की आंखें लाल हो गईं। वे आज्ञा दे बैठे, 'जो विद्रोह करता है उसे प्राण-दंड दो।'

नगराधिकारी धीरे से बोला, 'अन्नदाता, यह विद्रोह साधारण नहीं है। राज्य में आग सी लगी हुई है।

स्फुट-स्वर में राजा विद्यासागर ने कहा, 'नगर में आग लगा दो। जो भी नारे लगाता मिले उसका शीश फौरन धड़ से जुदा कर दो।'

नगराधिकारी सिर झुकाये चुपचाप खड़ा रहा।

राजा विद्यासागर कुछ ढ़ीले पड़े। बोले 'इन्द्रसेन और रुद्रसागर को अभी यहाँ उपस्थित होने की आज्ञा सुनाओ।

सिर झुकाकर नगराधिकारी चला गया।

राजा विद्यासागर सोचने लगे, 'अवश्य ही यह कार्य किसी मंजे हुये राजनैतिक मस्तिष्क का ही है। उस दिन उर्वशी के साथ जिन दो भाइयों ने छेड़-छाड़ की थी, उन्हीं का तो यह कार्य नहीं है? कितनी गलती की मैंने उसी दिन उनके शीश उड़वा देने चाहिये थे।'

एकाएक इन्द्रसेन ने आकर कहा, 'आज तो बड़ा ही गड़बड़ मचा हुआ है पिताजी। मुझे तो परिस्थिति बड़ी भयानक मालूम पड़ती है। यह आग परदेश से आये हुये दो भाइयों की लगाई हुई है।

राजा विद्यासागर ने कहा, 'तो उन दोनों भाइयों को अभी बन्दी बनाकर मेरे सम्मुख उपस्थित किया जाय।'

कुछ सोचकर इंद्रसेन ने कहा, 'किन्तु आज यह असंभव मालूम

पड़ता है। इस समय राज्य की अधिकांश जनता उनके घर का पहारा दे रही है।'

राजा विद्यासागर कुछ सोच में पड़ गये।

अवसर पाकर इंद्रसेन ने कहा, 'यदि उचित समझा जाय तो कल के राज-दंड को रोक दिया जाय। इससे जनता में शांति स्थापित हो जायगी।'

राजा विद्यासागर ने क्रुद्ध होकर कहा, 'नहीं ऐसा कभी नहीं हो सकता। चरवाहे को कल ठीक समय पर प्राण-दंड दिया जायगा।'

इंद्रसेन चुप हो गये।

राजा विद्यासागर कहते गये, 'मैं किसी से डरता नहीं हूँ। मेरी आज्ञा का पालन न हो यह असंभव है। कल मैदान के चारों ओर सेना लगा दी जाय। किसी को भी उस मैदान में प्रवेश न करने दिया जाय।'

इद्रसेन सिर झुकाये चुप रहे।

क्षण भर रुक कर राजा ने कहा, 'तुम नहीं जानते इंद्रसेन, कि, थे ये दोनों भाई किसी अभिप्राय को लेकर हमारे राज्य में आकर बसे हैं। इन्होंने अपनी ओर से ही छेड़खानी शुरू की है। अभी तीन दिन हुये इन्होंने तुम्हारी बुआ राजकुमारी के साथ बड़ी गुस्ताखी की है। पुरुष होकर स्त्री पर हाथ छोड़ा है जिसके फलस्वरूप उनकी नाक में गहरी चोट आई है। विद्यासागर की बहिन पर हाथ छोड़ना दिल्लगी नहीं है। मैं इसका बदला लेकर रहूंगा।'

बुआ का अपमान सुनकर इंद्रसेन की भी त्यौरियाँ चढ़ गईं। बोले, 'आपने उसी समय मुझे आज्ञा क्यों नहीं दी? मैं उनके सिर काट कर बुआ के चरणों में डाल देता।'

सिर हिलाते हुये विद्यासागर ने कहा, 'मेरी उसी गलती का तो नतीजा जो उनकी इस कदर हिम्मत बढ़ गई।'

इन्द्रसेन ने कहा, किन्तु मैं बुआ के अपमान का बदला लेकर रहूँगा।'

कुछ देर चुप रहकर राजा ने कहा, 'खैर वह तो लिया ही जायेगा। तुम सतर्क होकर कार्य करना और यदि कल उस मैदान के निकट दोनों में से कोई भाई दिखलाई पड़ जाय तो उसे फौरन बंदी बनाकर मेरे सामने उपस्थित कर देना।'

इंद्रसेन बोला, 'जैसी आपकी आज्ञा।'

राजा कहने लगे, 'कल की राजाज्ञा का पालन अवश्य होना चाहिये। यदि ऐसा न हुआ तो दोनों भाई तथा राज्य की जनता यह समझ लेगी कि हम डर गये।'

इन्द्रसेन चुपचाप चला गया।

किन्तु—

रात्रि में ही कई राज-भक्तों की जनता ने हत्या कर दी। कई सरकारी दफ्तरों को लूट लिया। डर के मारे सारे नगर की पुलिस भाग खड़ी हुई। केवल राजमहल पर कड़ा पहरा लगा दिया गया। रात भर आवाजों से आकाश गूँजता रहा। ऐसा प्रतीत होता था कि सारे नगर में विपलव हो रहा है।

राजा विद्यासागर क्रोध, क्षोभ और चिन्ता के कारण रात्रि भर कक्ष में टहलते रहे। वे इस गुत्थी को सुलझा न पाते थे। कभी-कभी वे क्रोध से अपने होठ काट लेते थे।

अन्त में अपने दो विश्वस्त अनुचरों को बुलाकर उन्होंने कुछ गुप्त परामर्श किया और फिर उन्हें विदा करने के पश्चात् उनके ओठों पर हलकी सी मुस्कान दौड़ गई।

नौ

सवेरे ८ बजे जब सेना मैदान पर अधिकार जमाने गई तोउसने देखा कि जनता ने उस पर पहिले से ही अधिकार जमा लिया है। कहीं तिल रखने की जगह न थी।

सेना को देखते ही जनता भय-त्रस्त हुई। कुछ लोग इधर-उधर भागने लगे।

हरिदास ने आवाज़ लगाई, 'भागना कायरों का काम है। डर कर मोरचा लो। मारो या मर जाओ।'

भागती भीड़ रुक गई। सेना ने मैदान के बीच का भाग खाली करा लिया। चारों ओर सेना ने पंक्ति लगा कर मैदान को घेर लिया। जनता चुप होकर देखने लगी।

थोड़ी देर में लगभग ५० सैनिकों द्वारा घिरा हुआ दंडित चरवाहा लाया गया। उसका शरीर लोहू-लुहान था। भय से मुंह पीला पड़ा हुआ था। वह बुरी तरह से रस्सियों में जकड़ा हुआ था।

उसे मैदान के बीच में लाकर खड़ा किया गया। पास में मुख्य नगर अधिकारी, पुलिस प्रमुख तथा आठ-दस सैनिक थे। अधिकारी ने आज्ञा दी, 'जल्द गड्ढा खोदा जाय।'

बीस-पच्चीस मजदूर गड्ढा खोदने लगे।

कुछ घबड़ाये से हरिदास ने निकट खड़े हुये निशानाथ से कहा, 'अब क्या किया जाय? अब तो चरवाहे की जान बचती नजर नहीं आती। रात भर की तैयारी सब बेकार हुई जाती है।'

कुछ मुस्करा कर निशानाथ ने कहा, 'आप इतना घबड़ा क्यों गये हैं? हमको जनता का ही भरोसा है। अच्छा नेतृत्व चाहिए, जनता तो अपने आप ही क्रियाशील हो जाया करती है।

हरिदास किंकर्तव्य विमूढ़ थे। निशानाथ चुपचाप वहाँ से चले गये।

मामला गंभीरता पकड़ रहा था। गड्ढा तैयार हो चुका था। सैनिक चरवाहे को पकड़ कर गड्ढे की ओर ले चले।

एकाएक एक व्यक्ति भीड़ से निकल कर अधिकारियों के सामने पहुंच गया और स्फुट-स्वर में बोला, 'आप इसे क्यों मृत्यु-दंड दे रहे हैं।'

जोर से उसके गाल पर एक तमाचा मारते हुये मुख्य अधिकारी ने कहा, 'तू कौन है उल्लू के पट्ठे। सिपाहियो, इसको भी चरवाहे के साथ इसी गड्ढे में डाल दो।'

सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। वह व्यक्ति छूटने के लिए छटपटा रहा था।

हरिदास ने दूर से पहिचाना। वह सुकंठ था।

सुकंठ को विपत्ति में पड़ा देख हरिदास के लिए रुकना कठिन था। वह कूद कर सैनिकों के घेरे में घुस गया। उसने कस कर मुख्य अधिकारी के एक लात जमाई। मुख्य अधिकारी भड़भड़ाकर गिर पड़ा।

सैनिक उसे पकड़ने दौड़े किन्तु हरिदास सतर्क था। उसने झट

कमर में छिपी हुई छोटी सी कटार निकाल ली। सैनिक भी तलवार निकाल कर उसकी ओर झपटे।

एक व्यक्ति पच्चीसों से लड़ रहा था। हरिदास के शरीर में अतुल बल था। किन्तु लड़ते-लड़ते वह बुरी तरह से घायल हो गया था।

हरिदास को घायल देख कर जनता नारे लगाने लगी। उत्तेजना फैली और सैनिकों पर लोग पत्थर बरसाने लगे। कुछ लोग आगे भी बढ़ने लगे। चारों ओर से 'मारो-मारो' की आवाजें आने लगीं। बुरी तरह से चारों ओर से ईंट-पत्थर चल रहे थे तथा भीड़ आगे बढ़ती चली आ रही थी।

सैकड़ों व्यक्ति हरिदास के निकट पहुंच गये। इन लोगों के पास भी शस्त्र थे। सैनिकों से जम कर लड़ाई होने लगी।

हरिदास काफी घायल हो चुका था। वह गिरने वाला ही था कि पीछे से निशानाथ ने आकर उसे संभाल लिया। इसी समय एक सैनिक ने आकर निशानाथ पर तलवार से वार किया। 'आह' कह कर निशा-नाथ धरती पर गिर पड़े। घायल हरिदास निशानाथ को पीठ पर लाद कर धीरे से एक ओर चल दिया।

काफी लोग घायल हो चुके थे। जनता भी घायल हुई और सैनिक भी। कुछ लोग मर भी गये जिनमें मुख्य नगर अधिकारी भी था। इस गड़बड़ी में मुकंद चरवाहे को छुड़ा कर चलता बना। परिस्थिति बिगड़ती देखकर सैनिक और अधिकारी मैदान छोड़ कर चल दिये। जनता ने मानो विजय प्राप्त कर ली थी। नगर भर में हल्ला मचा हुआ था। निशानाथ के घायल होने के समाचार ने जनता को और भी उत्तेजित कर दिया था।

हरिदास निशानाथ को अपने घर ले गया। फौरन वैद्य को बुलाया मरहम-पट्टी कराई गई।

चोट अधिक गहरी न थी। निशानाथ आंख बन्द किये लेटे पड़े थे।

किसी ने धीरे से पुकारा 'निशानाथ !'

निशानाथ ने आँखें खोल दीं।

सामने राजीव खड़े थे।

पीड़ितावस्था में भी निशानाथ के चेहरे पर मुस्कान आ गई।

एक बैलगाड़ी पर निशानाथ को लिटा कर राजीव उन्हें कुटी की ओर ले चले। बहुत से लोग साथ चले।

मार्ग में राजीव ने पूछा, 'चरवाहा किधर गया ?'

मुस्कराकर एक व्यक्ति ने कहा, 'आप उसकी चिन्ता न करें। वह ठीक जगह पर पहुंच गया। सुकंठ उसके साथ है।'

राजीव ने कहा, 'सुकंठ का साहस सराहनीय है। साथ ही साथ हरिदास ने आज जो वीरता दिखलाई है वह उन्हें सदा अमर रखेगी।'

सभी लोग बोल उठे, 'यह सब आपके चरणों का प्रताप है, नहीं तो हम लोग क्या कर सकते थे ?'

कुछ गंभीर होकर राजीव ने कहा, 'अभी तो संघर्ष प्रारम्भ ही हुआ है। यह अत्याचारी राजा चुप न रहेगा। हमको अपनी इस सफलता पर फूल न जाना चाहिये। अभी संगठन और बलिदान की आवश्यकता है। इस संघर्ष का अन्त अत्याचार के अन्त के साथ ही होगा।'

कुटी के निकट पहुंच कर राजीव निशानाथ को लेकर उतरे। द्वार पर पहुँच कर कुटी की अवस्था कुछ अस्त-व्यस्त मालूम दी।

राजीव ने कुछ घवड़ाकर पुकारा, 'पुनीता !'

किन्तु वहाँ सन्नाटा था।

कोई कुटी को उजाड़ कर पुनीता को ले गया था।

दोनों भाई किंकर्तव्यविमूढ़ से खड़े हो गये।

*

दस

राजा विद्यासागर ने मुस्करा कर कहा, 'तुमने पुरस्कार पाने योग्य काम किया है बुद्धिसागर। अपने छोटे भाई की मृत्यु का समाचार पाकर ज्योंही राजीव कुटी के बाहर निकला मैं फौरन कुटी के पास पहुँच गया। साथ में पाँच सैनिकों को भी ले गया। द्वार पर ही विह्वला के रूप में पुनीता को खड़ा देखा। सच कहता हूँ बुद्धिसागर, उसका रूप देख कर मैं तो ठगा सा रह गया। मुझे देख कर वह चीख पड़ी और बेहोश हो गई। बस, सैनिकों की सहायता से मैंने उसे उठवा कर रथ में रक्खा और ले आया।

अभिवादन करते हुये बुद्धिसागर बोला, 'अन्नदाता, वह आपके ही योग्य है। संसार में किसके पास इतनी शक्ति है जो उसे आपसे वापिस ले जाय।

तभी इन्द्रसेन के आने की सूचना मिली। उसके मुंह पर उदासी छाई हुई थी। नत-मस्तक होकर बोला, 'अब क्या करना होगा पिताजी।

इस बार तो जनता के सामने हमारी बड़ी ही लज्जाजनक पराजय हुई है। हम मुंह दिखलाने योग्य नहीं रह गये।'

राजा अभिमान भरे शब्दों में बोला, 'तुम चिन्ता न करो इन्द्रसेन। जनता को भड़काने वाले इन दोनों भाइयों को मैं ऐसा दंड दूंगा कि वे जीवन भर याद करेंगे।'

इन्द्रसेन मन ही मन खिझलाकर बोला, 'किन्तु जनता को—'

बात काट कर स्फुट-स्वर में राजा बोला; 'जनता को धीरे-धीरे दमन की चक्की में पीस दो। इन उपद्रवकारियों में से खास-खास व्यक्तियों को पकड़ कर कारागर में डाल दो। जिन्होंने उपद्रव में अधिक भाग लिया हो उनके शीश काट कर दुर्ग के फाटक पर टाँग दो। उनकी संपति लूट लो। जाओ।'

इस दमन-चक्र से सचमुच जनता पिसने लगी। चुन-चुन कर लोग पकड़े जाने लगे। हरिदास, सुकंठ, चरवाहा तथा अन्य नेता राजीव की कुटी में जाकर छिप रहे। न जाने कितने व्यक्तियों से जबरदस्ती जुर्माना वसूल किया गया। बहुतों को घर से बाहर निकाल कर डाल दिया गया तथा उनके घर ढहा दिए गये।

अत्याचार से सारा नगर त्राहि-त्राहि पुकारने लगा। जनता में शक्ति का सर्वथा अभाव था। संयुक्त मोर्चा लेने के स्थान पर लोग इधर-उधर भागने लगे। कोई किसी का न था। लोग अपने-अपने बचाव का अलग अलग प्रबन्ध करने लगे। अधिकारियों ने कस कर बदले लिये। सारे नगर पर अतिरिक्त कर लगा दिया गया।

उधर कुटी में बैठे हुये राजीव, निशानाथ, हरिदास, सुकंठ तथा कुछ अन्य व्यक्ति परामर्श कर रहे थे।

हरिदास ने कहा, 'इतने बड़े और शक्तिशाली राजा को चोरों की भाँति एक अबला को जबरदस्ती उठा कर ले जाने में लाज भी नहीं आई। साहस था तो सामने आकर मुक़ाबिला करना था।'

मुकंठ ने कहा, 'हम इस नगर की ईंट से ईंट बजा देंगे। आखिर हमारी भी तो कोई शक्ति है ?'

गम्भीर वाणी में राजीव ने कहा, 'यदि वह वास्तव में पुनीता को ले गया है तो फिर संसार में कोई उसकी रक्षा न कर सकेगा।'

क्रुद्ध-वाणी में निशानाथ बोल उठे, 'उसे मेरे हाथों मरना पड़ेगा।'

सुकंठ ने कहा, 'इस समय नगर से जो समाचार आ रहे हैं उन्हें सुन कर हृदय कांप उठता है। परिस्थिति को देखते हुये अब अधिक रुका नहीं जा सकता।'

हरिदास ने कहा, 'राजा के पास बहुत बड़ी शक्ति है। हमारे पास शक्ति का नितान्त अभाव है। फिर हम इतने शक्तिशाली शत्रु से कैसे टक्कर ले सकते हैं ?'

सुकंठ ने कहा, 'हम जनता का संगठन करें। जनता की शक्ति ही हमारी शक्ति है।'

निशानाथ ने कहा, 'हम जनता पर विश्वास करके इतने बड़े संघर्ष का संचालन नहीं कर सकते। जन-शक्ति महान है, किन्तु जब जनता का नैतिक स्तर ऊंचा और परिष्कृत हो। तब जन-उत्तेजना क्षणिक और अस्थायी होती है। महाराज की सुशिक्षित पटु और संगठित सेना के आगे जनता कितने दिन ठहर सकेगी ?'

हरिदास ने कहा, 'आप ठीक कह रहे हैं। हम इस राज्य की जनता के विश्वास पर इतना बड़ा खतरा नहीं मोल ले सकते।'

थोड़ी देर तक सब लोग चुप रहे, फिर सुकंठ ने कहा, 'हम इस विषय को लेकर कुछ पड़ोसी राज्यों के साथ संधि करें तो कैसा रहे ?'

हरिदास एकाएक बोल उठे, 'यह प्रस्ताव ठीक है। थोड़ी दूर पर हरिनगर नामक एक रियासत है। वहां के शासक श्री केशवर्द्धन भी एक अत्याचारी नरेश हैं। उन्होंने अपने छोटे भाई को निरपराध राज्य से निकाल कर उन सबका कुछ छीन लिया है। उसकी रूपवती पत्नी को भी

अपने पास रख लिया है। इस घटना से उस राज्य की जनता भी राजा के विरुद्ध है। छोटा भाई कंठवर्द्धन जन-प्रिय है। जनता उसे चाहती है।'

निशानाथ बोल उठे, 'यह प्रस्ताव बहुत सुन्दर है। यदि हम कंठ-वर्द्धन की सहायता करके उसे हरिनगर का शासक बना सकें तो यह समस्या बड़ी जल्दी हल हो जायगी।'

सुकंठ बोल उठा, 'मैं कंटवर्द्धन को जानता हूँ। यदि आप लोग उचित समझें तो मैं उसे यहाँ बुलाकर ला भी सकता हूँ।'

हरिदास ने कहा, 'कंठवर्द्धन स्वयं शक्तिशाली है और उसके पास छोटी सी एक सेना भी है।'

राजीव बोल उठे, 'मैं अत्याचार और अन्याय से पीड़ित प्रत्येक व्यक्ति की सहायता कर सकता हूँ।'

हरिदास ने कहा, 'हमको उसकी सहायता की आवश्यकता है और उसे हमारी। हम क्यों न परस्पर मित्रता स्थापित कर लें। कंठवर्द्धन बड़ा ही न्याय-प्रिय, बात का धनी और शक्तिशाली व्यक्ति है।'

सभी राजीव के मुख की ओर देखने लगे। राजीव ने कहा, 'मैं कंठ-वर्द्धन की हार्दिक सहायता करूंगा। प्रतीड़ित और दलित की सहायता करना हमारा कर्तव्य है। यदि कंठवर्द्धन न्याय पर दृढ़ है तो वह अवश्य ही विजयी होगा।'

सब लोगों के चेहरे पर प्रसन्नता मुस्करा उठी। हरिदास खड़े होकर बोला, 'मैं कंठवर्द्धन को आज ही यहाँ लाने का प्रयत्न करूंगा। मैं उनकी सेवा में भी वर्षों रह चुका हूँ।'

सुकंठ के मुंह से निकला, 'ठीक है। तब यह कार्य शीघ्र ही होना चाहिये। इसके अतिरिक्त हमको जल्द से जल्द पुनीता जी का पता लगाना है।'

हरिदास ने कहा, 'इसका भार मैं लूंगा। पृथ्वी, आकाश, पाताल कहीं भी न होगी मैं पता लगाकर ही दम लूंगा। मैं जानता हूं कि यहाँ का राजा ही अपराधी है। अवश्य ही वह अकेली कुटी पाकर पुनीता जी को उठा ले गया है।'

निशानाथ की आँखें क्रोध से कुछ लाल-सी हो गईं। उनके मुँह से निकला, 'इस दुष्कर्म का उसे भारी मूल्य चुकाना पड़ेगा। दादा उसे इस कृत्य के लिए भले ही क्षमा कर दें किन्तु मैं उसे किसी प्रकार भी क्षमा न कर सकूँगा।'

खड़े होते हुये हरिदास ने कहा, 'तो फिर कंठवर्द्धन को आज ही यहाँ लाना निश्चित हुआ। यह भार मेरे ऊपर रहा।'

मुस्कराकर सुकंठ बोला, 'तुम्हारी शक्ति तो मैं समझता हूँ हरिदास। संसार में ऐसा कौन-सा कार्य है जो तुम नहीं कर सकते? जिसकी तुम सहायता करो उसकी विजय कौन रोक सकता है? तुम क्या अपनी शक्ति भूल गये?'

अपनी प्रशंसा सुनकर मानो हरिदास के शक्ति में नई स्फूर्ति-सी आ गई। उसके शरीर में मानो अपूर्व शक्ति का संचार होने लगा। वह उठ कर खड़ा हो गया और बोला, 'राजीव का सा नेता पाकर मैं सब कुछ कर सकता हूँ। मैं पुनीता का पता लगा कर ही रहूँगा। उस दुष्ट विद्यासागर को तो बिना मौत के ही मरना पड़ेगा। अच्छा, तो फिर मैं चला।'

कहता हुआ हरिदास कुटी के बाहर हो गया। उसके जाने के पश्चात् निशानाथ ने कहा, 'यह व्यक्ति बड़ा खरा, शक्तिशाली और विश्वस्यनीय है। इसकी सहायता हमारे लिये बड़ी मूल्यवान सिद्ध होगी।'

सुकंठ कहने लगा, 'मस्त किस्म का आदमी है। जीवन-भर अविवा-

हित रहकर इसने ब्रह्मचर्य का पालन किया है। हरिदास का यह स्वभाव है कि वह सदैव निर्बलों की सहायता करता है।'

राजीव बोल उठे, 'इस प्रकार के व्यक्ति मुझे बहुत प्रिय हैं। मैं उस व्यक्ति को हृदय से चाहता हूँ जो मर्यादा और न्याय के लिये अपने प्राण देने के लिए प्रस्तुत रहता है।'

*

ग्यारह

चक्रधर की मृत्यु ने सारे परिवार को शोकसागर में डुबा दिया था। पुरुषों में केवल चन्द्रनाथ ही घर पर थे। राजेन्द्र को तार भेज कर बुलाना पड़ा।

राजेन्द्र को माता के इस षड्यन्त्र का कुछ भी पता न था। उसे तो केवल यह लिखा गया था कि हृदय की गति बंद हो जाने से पिता की सहसा मृत्यु हो गई है।

घर में सन्नाटा देखकर राजेन्द्र का माथा ठनका। उसने धीरे से अपनी माँ से पूछा, 'यह घर में सन्नाटा क्यों है माँ ? राजीव और निशानाथ कहीं गये हुए हैं क्या ? बात क्या है ?'

कुछ मुस्कराकर कांता ने कहा, 'कोई खास बात नहीं है राजेन्द्र। पिता अपनी सारी संपत्ति तुम्हीं को दे गये हैं। तुम किसी बात की चिन्ता क्यों कर रहे हो ? समय आने पर सब कुछ बता दूंगी।

किन्तु राजेन्द्र के लिए यह सब असह्य था। वह समझ गया कि

अवश्य ही कोई अनहोनी घटना हुई है। वह जरा स्फुट-स्वर में बोला, 'यह सब तुम क्या कह रही हो ? सम्पत्ति समान रूप से हम चारों भाइयों की है। फिर सारी सम्पत्ति मुझे कैसे दे गये पिताजी ? मैं इस प्रकार के अन्याय का समर्थन नहीं कर सकता। मुझे बतलाओ कि आखिर हुआ क्या है ?'

कांता चुप रही। स्फुट स्वर में राजेन्द्र बोला, 'तुम बतलाती क्यों नहीं ? मुझे तो सारी करतूत तुम्हारी ही मालूम पड़ती है। राजीव जैसे भाई के सामने मैं सारी सम्पत्ति को लात मारता हूँ।'

कांता फिर भी चुप रही। राजेन्द्र उठकर खड़ा हो गया और बोला, 'मैं समझ गया था। तुम्हीं ने कुछ तूफान खड़ा करके पिताजी के प्राण लिये हैं। मैं मंझली माँ से अभी जाकर सब कुछ पूछता हूँ।'

और—

राजेन्द्र चित्रा के कमरे में पहुँचा।

चित्रा उदास भाव से एक कोने में सिर नीचा किये बैठी थी। राजेन्द्र ने आकर उसके चरण-स्पर्श किये। वह आशीर्वाद देकर चुप रही।

राजेन्द्र ने धीरे से कहा, 'यह सब क्या हो गया माँ ?'

चित्रा चुप रही।

राजेन्द्र ने कहा, 'मैं बड़ा अभागा हूं जिसको कांता जैसी माँ मिली हैं। तुम विश्वास करो मंझली माँ कि मैं इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं जानता हूँ। जो कुछ मेरी माँ ने किया है यदि इसका अणु-मात्र भी मुझे ज्ञान हो तो मुझे भगवान जीवन में कभी सुख और शान्ति न दें। मुझे गो-वध का पाप लगे, मैं पितृ-हन्ता बनूँ...'

कहते-कहते राजेन्द्र चक्कर खाकर गिर पड़ा, चित्रा ने उसे दौड़कर उठाया तथा मुँह पर जल के छींटे देने लगी।

राजेन्द्र ने थोड़ी देर में आँखें खोल दीं। चित्रा ने स्नेह से उसके

सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'उठो राजेन्द्र, जो होना था वह हो गया। पिताजी तुम्हें सब कुछ सौंप गये हैं। अब तुम्हें घर का प्रबन्ध अपने हाथों में लेना चाहिये।'

राजेन्द्र ने धीरे से कहा, 'किन्तु यह सब हुआ कैसे ?'

चित्रा ने सारी कथा सुनाते हुये कहा, 'इसमें कांता का इतना दोष नहीं जितना उस ज्योतिषी वागीश शास्त्री का है। उसने ही तुम्हारी माँ के कान भरे हैं।'

राजेन्द्र की आँखें क्रोध से कुछ लाल-सी हो गईं। वह बोला, 'मैं इसका प्रतिकार करूँगा। राजीव दादा को ढूँढ कर सब कुछ उन्हीं को सौंप दूँगा। और—और—'

कहते-कहते वह चुप हो गया। चित्रा भी चुप थी।

राजेन्द्र अब उठकर बैठ गया और धीरे-धीरे कहने लगा, 'मुझे कुछ नहीं चाहिये माँ। राजीव दादा के शासन और अनुशासन में रह-कर ही मुझे सुख मिल सकता है। मैं आज ही उनकी खोज में रवाना हो जाऊँगा।'

वह उठकर धीरे से माँ के कमरे की ओर चला। क्रोध, क्षोभ लज्जा से उसके पैर सीधे न पड़ रहे थे।

द्वार पर खड़ी हुई नौकरानी ने बतलाया, 'पंडित वागीश शास्त्री छोटी बहू से बात कर रहे हैं।'

वागीश शास्त्री का नाम सुनते ही राजेन्द्र के पैर क्रोध से थरथराने लगे। वे जल्दी से कमरे में घुस गये।

ऊँची मखमल की गद्दी पर तकिया लगाये शास्त्री जी प्रसन्न-वदन बैठे हुये थे। सामने एक कुर्सी पर कांता बैठी धीरे-धीरे कुछ कह रही थी।

राजेन्द्र को देखकर शास्त्री जी मुस्करा दिये। राजेन्द्र चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गया।

शास्त्री जी उसी प्रकार मुस्कराते हुए बोले, 'तुम पर काफी बोझ आ गया है राजेन्द्र। अब तुम्हें परिश्रम करना पड़ेगा।'

राजेन्द्र कुछ बोला, नहीं, 'चुप रहा।'

शास्त्री जी कहने लगे, 'सौभाग्य से अब तुम्हीं इस घर और संपत्ति के स्वामी हो। तुम्हें...'

दृढ़ स्वर में राजेन्द्र बोला, 'किन्तु मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं स्वयं इस घर का त्याग करना चाहता हूँ।'

वागीश शास्त्री की मुखाकृति गंभीर हो गई। वे किंचित दृढ़ स्वर में बोले, 'नादानों की सी बात मत करो राजेन्द्र। तुम्हारे लिए संपत्ति प्राप्त करने में बड़ा श्रम और प्रयत्न करना पड़ा है।'

राजेन्द्र फौरन बोल उठा, और इसी श्रम और प्रयत्न के फलस्वरूप पिताजी को अकाल मृत्यु से मरना पड़ा है। यही न?'

अब चेहरे पर किंचित रोष के भाव लाते हुए कांता ने कहा, 'बात करना सीखो राजेन्द्र। वैभव और सत्ता से बड़ा कुछ नहीं है संसार में।'

धीरे से राजेन्द्र ने कहा, 'किन्तु क्या तुम्हारे सोहाग से भी बड़ा...'

चिल्लाकर कांता ने कहा, 'चुप रहो राजेन्द्र। मैं यह सब सहन नहीं कर सकती।'

राजेन्द्र ने निर्भीक होकर कहा, 'तुम मेरी जुबान नहीं बन्द कर सकतीं माँ। तुमने जो किया है वह ससार में कोई भी स्त्री नहीं कर सकती। तुमने वैभव, सत्ता और सम्पत्ति के लोभ में हमारे हरे-भरे घर को उजाड़कर श्मशान बना दिया है। तुम्हारा नाम युग-युग तक इस परिवार के इतिहास को कलंकित करता रहेगा।'

शास्त्री जी बोल उठे, 'किन्तु तुम्हारा इतिहास तो अमर कर दिया गया है। तुम्हें तो अपनी माँ का कृतज्ञ ही होना चाहिए।

राजेन्द्र का क्रोध सीमा को पार कर रहा था। वह चिल्लाकर

बोला, 'मेरे घर के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार आपको किसने दिया ? आप कौन हैं ?'

शास्त्री जी अत्यन्त गम्भीर वाणी में बोले, 'मैं कौन हूँ ? मैं हूँ तुम्हारे अस्तित्व का जनक । तुम अभी दूध पीते बच्चे हो । इस विषय में मैं तुम्हें चुप रहने का आदेश देता हूँ ।'

चिल्लाकर राजेन्द्र बोला, 'किन्तु मैं चुप न रहूँगा । मैं अपने परिवार....'

बीच ही में कांता बोल उठी, 'शास्त्री जी का अपमान मैं सहन नहीं कर सकती राजेन्द्र । तुम अपनी सीमा में रहकर बात करो ।'

राजेन्द्र स्फुट-स्वर में बोला, 'किन्तु आज सारी सीमायें टूट गई हैं । इस नामधारी संयासी ने इस परिवार पर अपना प्रभाव डालकर हमारा सर्वस्व स्वाहा कर दिया है । शास्त्री जी ! आप इसी समय—अभी—इस घर से बाहर चले जायें ।

शास्त्री जी अट्टहास कर उठे । बोले, 'नादान बच्चे, तू अभी नहीं जानता कि मैं कौन हूँ ! मैं—मैं—'

राजेन्द्र ने कसकर एक लात शास्त्री जी के लगाई और क्रोध से हाँफता हुआ बोला, 'निकल हमारे घर से शैतान के बच्चे—निकल अभी निकल— मंगल, बुद्धू, रामू—निकालो इस बदमाश को इस घर से—'

कई नौकर दौड़ कर आ गये । मंगल ने शास्त्री जी से कहा, 'अब आप इस घर के बाहर ही हो जाइये महाराज । निकलिये—'

देर लगती देख राजेन्द्र ने फिर चिल्लाकर कहा, 'फौरन निकालो इसे—अभी—'

नौकर शास्त्री जी ठेल कर बाहर ले जाने लगे । शास्त्री जी ने कातर दृष्टि से कांता की ओर देखा । कांता राजेन्द्र के निकट आकर बोली, 'राजेन्द्र तुम—'

चिल्लाकर राजेन्द्र ने कहा, 'तुम चुप रहो माँ। इस दुष्ट के बहकावे में आकर जो तुमने इस घर का सत्यानाश किया है—'

क्रोध से दाँत पीसते हुए काँता ने कहा, 'मैंने सर्वनाश किया है? इस में चहल-पहल और बहार कौन लाया था? तुम मेरे पुत्र हो, क्या कहूं तुमसे?'

राजेन्द्र चुप खड़ा रहा। अब तक धक्के देकर नौकर शास्त्री जी को घर से बाहर निकाल चुके थे।

काँता कुछ बोली नहीं। राजेन्द्र बोला, 'मैं जा रहा हूं। यदि राजीव दादा को ढूंढ़ कर ला सका तो लौट कर आऊँगा, नहीं तो, इस नगर में आज मेरे जीवन का अंतिम दिन समझ लेना। प्रणाम।'

और—

राजेन्द्र उसी क्षण उस घर से बाहर हो गया।

+

बारह

सारी कथा सुनकर राजीव ने कहा. 'यह तो तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ है। मैं तुम्हारी हर प्रकार से सहायता करने को तैयार हूं।

कंठवर्द्धन ने हाथ जोड़ते हुये कहा, 'मैं आपका बड़ा आभारी हूं। मेरे बड़े भाई ने कपट के द्वारा मुझे पराजित किया है। मैं इसका बदला लेना चाहता हूं।

राजीव ने उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुये कहा, 'मैं आज से तुम्हें अपना मित्र बनाता हूं कंठवर्द्धन। तुम्हारी विपत्ति को आज से मैं अपनी ही विपत्ति समझूंगा।'

गद्‌गद् वाणी में कंठवर्द्धन बोला, 'मैं भी आज से अपने को आपका छोटा भाई समझूंगा। अपना राज्य मिलते ही मैं विद्यासागर का दर्प चूर्ण करके रख दूंगा। आप निश्चिंत रहें।'

राजीव ने कहा, 'मैं केशवर्द्धन को पराजित करके तुम्हारी स्त्री

नक्षत्रा का उद्धार करूँगा।'

कंठवर्द्धन बोल उठा, 'और मैं राजा विद्यासागर का माथा फोड़ कर पुनीता जी को ले आऊँगा।'

दोनों उठ कर गले मिले।

तभी एक अनुचर ने हाँफते हुए आकर कहा, 'सेना ने आक्रमण कर दिया है। जल्द तैयार हो जाइये।

सभी घबड़ा उठे। कंठवर्द्धन ने सबको साँत्वना बंधाते हुए कहा, 'घबड़ाने की बात नहीं है। मैं, हरिदास, सुकंठ और निशानाथ सेना का मुकाबिला करने के लिए पर्याप्त हैं। शत्रु को मुँह की खानी पड़ेगी।'

उस समय कुटी में लगभग बीस व्यक्ति थे। सभी ने अस्त्र-शस्त्र संभाल लिये तथा कुटी के बाहर निकल आये।

थोड़ी दूर पर इन्हें धूल उड़ती सी दिखलाई दी। थोड़ी देर में लगभग बीस-पच्चीस व्यक्ति इस ओर आते दिखलाई दिये।

हरिदास ने अपना खंग चमकाते हुए कहा, 'इतने सैनिकों के लिए तो मैं अकेला ही काफी हूं।'

निशानाथ ने अंगारों की भाँति आँखें लाल करके कहा, 'इस राजा का अंत निकट मालूम पड़ता है। क्यों न आज ही हम लोग इस राज्य में घुस पड़ें और विद्यासागर का सिर काट कर भाभी को ले आयें।'

राजीव शाँत प्रकृति के थे। उन्होंने धीरे से कहा, 'किसी भी कार्य में जल्दबाजी ठीक नहीं होती। सहसाकर्मी को बाद में पछताना पड़ता है। पहिले उन्हें आक्रमण करने दो। हम समझ तो लें कि ये लोग कौन हैं और यहाँ क्यों आये हैं।'

वे लोग काफी निकट आ गये थे। इस सेना में से एक नवयुवक तीर की तरह बाहर निकला और राजीव की ओर दौड़ा। उसके हाथ में किसी भी प्रकार का अस्त्र-शस्त्र न देख कर किसी ने उसे रोका नहीं।

वह राजीव के पैरों पर लोट गया। राजीव ने उसे हृदय से लगाते हुये कहा, 'कितने दुबले हो गये हो तुम राजेन्द्र-मेरे भाई।'

सब लोग स्तंभित होकर यह दृश्य देखते रह गये। निशानाथ को राजेन्द्र के प्रति हृदय में बड़ा क्षोभ था। उन्होंने बेमन से राजेन्द्र का चरण-स्पर्श किया।

राजेन्द्र ने आंखों से अश्रु गिराते हुये कहा, 'हम पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा दादा। आपके घर से निकलते ही पिताजी.......'

और उनकी हिचकियाँ बंध गईं। राजीव ने दुखी होते हुये कहा, 'क्या पिताजी नहीं रहे ? हे ईश्वर !'

शोक का वातावरण छा गया। बहुत देर तक सब लोग चुप और स्तब्ध बैठे रहे।

अंत में निस्तब्धता भंग करते हुये राजीव ने कहा, 'भाग्य का लिखा कभी टलता नहीं है राजेन्द्र। हम जिस परिस्थिति में हों हमको प्रसन्न रहना चाहिये। पिताजी अपना कर्त्तव्य कर गये अब हमको अपना कर्त्तव्य करना चाहिये।

राजेन्द्र ने धीरे से कहा, 'अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिये ही मैं अब आपको वापिस ले जाने के लिये आया हूँ दादा। आप चल कर घर-द्वार संभालें। मुझे भार-मुक्त करें।'

क्षण भर चुप रह कर राजीव ने कहा, 'यह तुम्हारी सदाशयता है राजेन्द्र, किन्तु हमको स्व० पिता के आदेश पर ही चलना चाहिये। पिताजी सब कुछ तुम्हें सौंप गये हैं। हमको उनकी भावनाओं का आदर करना चाहिये।

राजेन्द्र ने कहा, 'यह पिताजी का अन्याय था। आपके होते हुये मैं उस सम्पत्ति का अधिकारी नहीं हो सकता। मैं इस कलंक को अपने ऊपर नहीं ले सकता दादा। आप मुझ पर कृपा करके लौट चलें।

स्नेह से राजेन्द्र के सिर पर हाथ फेरते हुये राजीव ने कहा, 'तुम

मुझे अत्यंत ही प्रिय हो राजेन्द्र। मैं जानता हूँ कि इस षड़यंत्र में तुम नितान्त ही निर्दोष हो, किन्तु पिता की इच्छा और आज्ञा को, न्याय या अन्याय कहकर हम उसकी अवहेलना नहीं कर सकते। जो कुछ होना था वह तो हो चुका। जिस प्रकार मैंने पिता की इच्छाओं के आगे सिर झुकाया है उसी प्रकार तुम्हें भी झुकाना चाहिये।

राजेन्द्र कुछ दुखी होकर बोला, 'किन्तु मुझसे तो यह बोझ संभल न सकेगा दादा। यदि आप वापिस नहीं चलते तो मैं भी आपके साथ ही यहाँ रहूँगा। मैं किसी प्रकार भी घर लौट कर न जा सकूंगा।

राजीव बड़े पशोपेश में पड़ गये। उन्होंने राजेन्द्र को बहुत समझाया किन्तु वह किसी प्रकार भी राजी न हुआ।

अंत में राजीव ने कहा, 'मैं यहाँ आकर बड़ी विपत्ति में पड़ गया हूँ राजेन्द्र। तुम्हारी भाभी का कुछ दिन हुये अपहरण हो गया है। पुनीता का अपहरण संभवतः इसी राज्य के शक्तिशाली राजा ही द्वारा हुआ है। इसके अतिरिक्त इस राज्य की प्रजा भयंकर रूप से राजा के द्वारा पीड़ित है। मैंने यहाँ की प्रजा को सहायता देने का वचन दिया है इस सारे कार्य को समाप्त कर के ही मैं घर लौट सकता हूं। बिना इस कार्य को सम्पन्न किये मेरे घर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

राजेन्द्र सोचने लगा।

राजीव ने फिर कहा, 'तुम इतने अधिक परेशान न हो राजेन्द्र। इस कार्य से निवृत्त होकर मैं तुम्हारी सहायता कर सकूंगा।

अत्यंत गम्भीर होकर राजेन्द्र ने कहा, 'आप अपनी कह चुके, अब मेरी सुनिये। मैं इस सम्पत्ति को कभी ग्रहण नहीं कर सकता। जब तक आप अपने कार्य में व्यस्त हैं तब तक मैं उसकी रक्षा का भार ले सकता हूं। मालिक उस सम्पत्ति के आप ही रहेंगे। मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगा—उस प्रतीक्षा की भी एक अवधि होगी। यदि उस अवधि तक आप वापिस न आये तो मैं सब कुछ त्याग कर किसी अनिश्चित स्थान के लिये चल दूंगा। फिर कदाचित् मुझे जीवन में कोई न देख सकेगा।'

स्नेहपूर्ण दृष्टि से राजेन्द्र की ओर देखते हुये राजीव ने कहा तुम चिन्तित न हो राजेन्द्र। मैं आज ही के दिन लौट कर तुमसे रंगपुर में मिलूँगा। मुझे ठीक एक वर्ष का समय चाहिये। मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा।

क्षण भर रुक कर राजेन्द्र ने कहा, 'आज आश्विन के शुक्ल पक्ष की द्वादशी है। मैं इसी तिथि तक रंगपुर में रहूँगा। यदि आप उस दिन तक न लौटे तो फिर निश्चित रूप से अपने राजेन्द्र को कभी न देख सकेंगे।'

राजीव ने प्रेम से राजेन्द्र को हृदय से लगाते हुये कहा, 'मैं अपना वचन पूरा करूंगा। किन्तु एक शर्त मेरी भी है?'

राजेन्द्र ने कहा, 'आपकी आज्ञा शिरोधार्य होगी।'

राजीव ने कहा, 'तुम्हें विगत का सभी कुछ भूल कर छोटी मां का उसी प्रकार आदर करते रहना होगा जैसा पहिले तुम किया करते थे। इस विषय में मैं उन्हें बिल्कुल निर्दोष मानता हूँ।

राजेन्द्र ने कहा, 'आप ठीक कह रहे हैं। जिस व्यक्ति का दोष था उसे मैं घर से विदा करके ही आया हूं।

तेरह

पुनीता ने तड़प कर कहा, 'मैं सिंह की पत्नी हूँ तुम्हारे जैसे गीदड़ों की भवकियों से नहीं डरती। मैं मर कर भी अपना धर्म नहीं छोड़ सकती। तू मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता।'

मुसकुराकर राजा विद्यासागर ने कहा, 'सुन्दरी, मैं तुम्हें किसी बुरी नीयत से उठा कर नहीं लाया था, किन्तु तुम्हारे रूप को देखकर मुग्ध हो गया हूँ। तुम क्या उस साधारण से व्यक्ति के साथ कुटिया में रहने योग्य हो। तुम्हें राजरानी होना चाहिये। मैं तुम्हें महारानी बनाना चाहता हूँ।

क्रोध की मुद्रा में पुनीता ने कहा, 'मैं तेरे वैभव पर थूकती हूँ। तू विद्वान और बुद्धिमान होकर भी एक पतित व्यक्ति है। तेरा विनाश अवश्यम्भावी है। जिसे तू साधारण व्यक्ति कह रहा है उसी के डर से तू मुझे अकेले में उठा लाया। यदि तू अपने को वीर समझता है तो तुझे चोरों का कार्य न करना था।'

मुस्कराकर राजा ने कहा, 'तू मेरी शक्ति क्या समझ सकती है सुन्दरी। संसार में किसकी शक्ति है जो मेरे राज महलों में कदम भी रख सके। वह राजीव तो एक तुच्छ तिनके के समान है मेरे सामने। एक दिन उसका कटा हुआ शीस मेरे चरणों पर लोटता फिरेगा।'

पुनीता ने कहा, 'कायर लोग ही अपने मुंह से अपनी प्रशंसा के गान गाते रहते हैं वे, मेरे पति, तो कर्मठ व्यक्ति हैं। वे इतना बड़ा लाँछन सहन नहीं कर सकते। अन्याय पर न्याय की विजय निश्चित है। जिस दिन उन्हें पता चल जायगा कि मैं तेरे यहाँ बन्धन में हूँ, वे तेरे राज्य को सर्वनाश की होली में फूंक कर मुझे ले जायेंगे।'

अब किंचित रोष के स्वर में राजा ने कहा, 'मैं तुझे प्यार करता हूँ, इसी कारण तेरे अपशब्दों को सहन कर रहा हूँ। नहीं तो, राजा विद्यासागर को एक भी अपशब्द कह कर कोई भी व्यक्ति इस संसार में जीवित नहीं रह सकता। मैं चाहूँ तो अभी तेरा मान-मर्दन कर सकता हूँ, किन्तु मैं नितीज्ञ हूँ। स्त्री पर हाथ नहीं छोड़ सकता।'

व्यंग्य की मुस्कान में पुनीता ने कहा, 'वाह क्या कहना है आपके नीति-ज्ञान को? स्त्री का अपहरण भी तो नीति का ही पालन है न? पराई स्त्री को अधर्म के लिये तैयार करने से बड़ी और क्या नीति हो सकती है। तुझसे बढ़कर संसार में और कौन नीच हो सकता है जो—'

राजा विद्यासागर की सहन-सीमा समाप्त हो रही थी। क्रोध से तलवार निकाल कर बोला, 'अब जो तूने एक शब्द भी कहा तो तेरा शीस धरती पर लोटने लगेगा। यदि कुशल चाहती है तो अब अपनी जिह्वा बन्द कर ले। तू शायद अभी मुझे जानती नहीं है! मेरा नाम विद्यासागर है। सारा संसार मेरे नाम से काँपता है।'

पुनीता दृढ़ स्वर में बोली, 'मैं मृत्यु से नहीं डरती। मेरा शीस काटने की तुझ में शक्ति कहाँ? शीस तो अन्यायी के कटा करते हैं।

यदि तू वास्तव में पण्डित है, नीतिवान है तो मुझे आज ही मेरे पति की कुटिया में पहुँचा दे।'

म्यान में तलवार रखते हुये राजा ने कहा, 'आज मैं तुझे छोड़े देता हूँ, किन्तु शीघ्र ही तुझे मेरे आगे झुकना पड़ेगा। यदि एक मास के अन्दर तू मेरी अंकशाविनी न हो गई तो तुझे सचमुच ही मौत के घाट उतरना पड़ेगा।'

कह कर विद्यासागर चला गया।

पुनीता को जिस स्थान पर रक्खा गया था वह एक छोटा-सा उपवन था। अशोक के वृक्ष के नीचे एक छोटी-सी कुटी बनी हुई थी उसी में पुनीता व न्दनी की भाँति रहती थी। उपवन के चारों ओर कड़ा पहरा लगा रहता था।

राजा के चले जाने के पश्चात् पुनीता फूट-फूट कर रोने लगी। वह समझ गई थी कि जिस स्थान पर वह वंदिनी बना कर रक्खी गई है वहाँ से उसका छुटकारा कठिन ही है।

संध्या का समय था। झुटपुटे में अन्धकार प्रकाश को निगलता चला आ रहा था। पुनीता ने द्वार की ओर देखा। एक मानव-आकृति धीरे-धीरे अपने को छिपाती एवं चारों ओर की आहट लेती हुई उसी की ओर चली आ रही थी।

वह घबड़ा उठी। अवश्य ही उसी दुष्ट राजा की ओर से भेजा हुआ कोई व्यक्ति होगा। पुनीता सिहिर उठी।

वह व्यक्ति पुनीता के आगे आकर चुपचाप प्रणाम करके खड़ा हो गया।

पुनीता ने साहस करके पूछा, 'कौन हो तुम ?'

उसने अत्यन्त ही विनीत वाणी में कहा, 'मैं हूँ आपका एक तुच्छ दास।'

पुनीता इसे विद्यासागर का ही माया जाल समझ रही थी। कड़क

कर बोली, 'मुझसे क्या चाहते हो ? यहाँ क्यों आये ?'

वह फिर विनीत भाव में बोला, 'मैं आपके पति राजीव लोचन का एक तुच्छ भक्त हूँ। मेरा नाम हरिदास है।'

पुनीता असमंजस में पड़ गई। बोली, 'तुम मुझे ठग नहीं सकते। यहाँ से चले जाओ।'

हरिदास ने अपनी कमर टटोल कर एक छोटा-सा पत्र निकाला और उसे पुनीता की ओर बढ़ाते हुये कहा, 'यह प्रमाण पत्र है। आशा है अब आप मुझे अपना ही सेवक समझेंगी।'

पुनीता ने पत्र ले लिया। पत्र राजीव का लिखा हुआ। वह पत्र पढ़ कर गद्गद हो गई। आँखों से आंसू गिराते हुये पुनीता ने कहा, मैं जिस बंधन में हूँ उससे छुटकारा पाना कठिन है। इतने शक्तिशाली राजा का मुकाबिला करना कठिन है। उनसे कह देना कि—'

और वे चुप हो गईं। अश्रु गिर रहे थे।

धैर्य बंधाते हुये हरिदास ने कहा, 'आप व्यर्थ में चिन्तित न हों। इस दुष्ट के विनाश की सारी तैयारियाँ हो चुकी हैं। आपको अधिक समय तक इस कारागार में न रहना पड़ेगा।'

किन्तु पुनीता निराश ही रही। हरिदास ने कहा, 'हम लोगों ने एक अन्य राजा से मैत्री करके इस राज्य पर आक्रमण की जोरदार तैयारियाँ कर ली हैं। इस आक्रमण में अब अधिक बिलम्ब नहीं है। मैं तो आपका समाचार लेने तथा आक्रमण की सूचना देने के निमित्त ही आया हूँ। यहाँ तक आने में मुझे बड़ी सतर्कता का आश्रय लेना पड़ा है।'

पुनीता चुप रही।

थोड़ी देर में पुनीता से आज्ञा लेकर हरिदास चल पड़ा। कुटी से बाहर आकर उसने देखा कि पहरे पर अधिक नियत्रण बढ़ गया। पहिले तो हरिदास घबड़ाया, किन्तु फिर उसने धैर्य से काम लिया।

इस उपवन से जो मार्ग राजमहल की ओर जाता था हरिदास ने वही मार्ग ग्रहण किया। इस मार्ग पर सन्नाटा। हरिदास राजमहल की ओर जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ा कर चलने लगा। उसे प्रति क्षण पकड़े जाने का भय था।

किन्तु थोड़ा ही आगे बढ़ने पर उसे पद-चाप सुनाई पड़ने लगी। आगे राजमहल खड़ा था और पीछे पहिरेदार चले आ रहे थे। वह थोड़ी देर के लिये तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया किन्तु उसने धैर्य से काम लिया। वह बिना किसी प्रकार का विचार किये ही राजमहल में हो घुस गया।

जिस भाग में वह घुसा था वहाँ बिल्कुल सन्नाटा था। अन्य कमरों से बोलने-चालने की आवाजें आ रही थीं।....हरिदास पहिले कमरे में खड़ा होकर सोचने लगा कि वह क्या करे?

तभी किसी के पैरों की आवाज आने लगी। कदाचित कोई उसी कमरे की ओर बढ़ा चला आ रहा था। हरिदास घबड़ा गया। अब वह क्या करे? पकड़े जाने पर मृत्यु-दंड निश्चित था। वह कोने में दुबक कर खड़ा हो गया।

दो पहरेदारों ने उस कमरे में दीपक लिये प्रवेश किया। हरिदास के काटो तो खून नहीं।'

एक पहरेदार बोला, 'तुम्हें भ्रम हुआ है जयंत। यहाँ तो कोई नहीं है?'

दूसरा बोला, 'मैंने उसे निश्चित रूप से इधर आते देखा है। भ्रम कैसे हो सकता है?'

पहिला बोला, 'इसी राजमहल का कोई सेवक भी तो हो सकता है। आखिर चला कहाँ गया?'

अवसर पाकर हरिदास उसी द्वार से बाहर भागा जिस द्वार से

पहरेदारों ने प्रवेश किया था। उसे भागते देख पहरेदार भी उसी ओर दौड़े।

अब तो महल में अच्छी-खासी भगदड़ मच गई। राजमहल के सारे पहरेदार और रहने वाले सतर्क हो गये। कुछ लोगों ने अपने कक्ष बंद कर लिये तथा कुछ इधर-उधर भागने लगे।

किन्तु हरिदास कहीं चाव न पा रहा था। अन्त में वह राजमहल से भाग कर उद्यान में आ गया। पहरेदारों ने उसे उद्यान में आ घेरा। अन्धकार का सहारा पाकर हरिदास एक पेड़ पर चढ़ गया। उद्यान पहरेदारों से भर गया। उनके हाथ में मसालें थीं।

कोई कहता, 'इधर गया है इधर।'

दूसरा कहता, 'अजी वह न जाने कब का बाहर निकल गया।'

किसी ने चिल्लाते कहा, 'सामने वाले पेड़ पर देखो! उधर ही गया है।'

उधर राजा विद्यासागर गरज रहे, 'यदि वह भाग गया तो राजमहल के सभी प्रबन्धकों को मृत्यु दण्ड दिया जायगा। किसी का राजमहल में घुस कर आने का साहस कैसे हुआ?'

अंत में हरिदास पकड़ लिया गया। उसके शरीर में बड़ा बल था। वह चाहता तो पहरेदारों को मार कर भाग सकता था, किन्तु वह सब व्यर्थ ही था। वह शत्रु-जाल में बुरी तरह से फंस गया था। बच कर निकल भागने का कोई उपाय न था।

उसे पकड़ कर राजा विद्यासागर के सामने उपस्थित किया गया।

राजा ने कड़क कर पूछा, 'तू कौन है और यहाँ क्या करने आया था?'

निर्भीक भाव से हरिदास ने कहा, 'जिस स्त्री को आप चुरा कर लाये हैं उसका पता लगाने आया था।'

कुछ मुस्करा कर राजा ने कहा, 'तू तो उस राजीव का आदमी है? क्यों न?'

गर्व से मस्तक ऊंचा करते हुये हरिदास ने कहा, 'हाँ, आप ठीक कहते हैं। मुझे इस बात का गर्व है।

गम्भीर होकर राजा ने कहा, 'उस मामूली से व्यक्ति का साथ देने से तुझे लाभ ? व्यर्थ में प्राण से हाथ धोना पड़ा न ?'

हरिदास बोला, 'मैं न्याय के साथ हूँ।'

मुस्करा कर राजा बोले, 'तो क्या मुझसे भी बड़े शक्तिवान, न्यायशील और नीतिज्ञ हैं वे ?'

हरिदास सीना फुलाकर बोला, 'निश्चित रूप से। आपकी नीति का क्या रहना। पराई स्त्री चुरा कर भी शक्तिवान और नीतिज्ञ आप बने ही रहे ?'

कुछ रोष में भर राजा बोला, 'तू बहुत ही गुस्ताख़ मालूम पड़ता है ? वे ही कहाँ के नीतिज्ञ हैं ? निहत्थी अबला को घेर का घायल करना कहाँ की वीरता है ? कौन सी नीति है।'

हरिदास समझ गया कि राजा का संकेत उर्वशी की ओर है बोला, दुश्चरित्र को दण्ड देना नीति का पहिला नियम है।'

बिगड़ कर राजा बोला, 'चुप रह। मैं तुझे मृत्यु-दण्ड देता हूँ। इन्द्रसेन को बुलाओ।'

फौरन इन्द्रसेन आ उपस्थित हुये। राजा ने आज्ञा के तौर पर कहा, 'मैंने इस व्यक्ति को मृत्यु-दण्ड दिया है। इसे जीवित जला दिया जाय।'

'जो आज्ञा' इन्द्रसेन ने उत्तर दिया।

राजा कहने लगे, 'अभी, इसी स्थान पर चिता बना कर इसे मेरे सामने ही फूँक दो।'

उसी समय चिता तैयार होने लगी। हरिदास पहरेदारों के बीच चुपचाप खड़ा रहा।

अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। हरिदास के दोनों हाथ रस्सी से कस कर बाँध दिये गये। पैर भी बंधे हुये थे।

राजा की आज्ञा से हरिदास को जलती चिता में डाल दिया गया।

किन्तु—

हरिदास पहिले ही से सतर्क था। उसने चिता में घुसते ही सारा बल लगा कर अपने बंधन तोड़ डाले। वह चिता से कूद कर बाहर आ गया। एक जलता हुआ लकड़ा उठा कर वह पास में खड़े हुये पहरेदारों को मार-मार कर गिराने लगा। दस-पन्द्रह व्यक्ति घायल होकर गिर पड़े। चारों ओर अन्धकार था। भगदड़ पड़ गई। अवसर पाकर वह राजमहल में घुस गया और उसी जलते हुये लकड़े से उसने स्थान-स्थान पर आग लगाना शुरू किया। सारा राजमहल धूँ-धूँ करके चिता की भाँति जलने लगा। हरिदास जिधर जाता उधर बिना आग लगाये न रहता। चारों ओर चिल्लाहट, पुकार और आर्तनाद सुनाई पड़ रहा था। लोग बेतरतीन इधर-उधर भाग रहे थे।

अवसर पाकर हरिदास राजमहल के बाहर आ गया। उपवन में अब भी चिता जल रही थी। उसने दूसरा जलता हुआ लकड़ा उठा लिया। उपवन में घोर सन्नाटा था। हरिदास दीवार फाँद कर उपवन से बाहर हो गया। राजमहल में आग लग जाने से नगर में भी भगदड़ मची हुई थी। हरिदास भागा तो जा रहा था किन्तु मार्ग में जिस राज-भक्त या राज्य-कर्मचारी का मकान मिलता वह उसमें भी आग लगा देता।

इस प्रकार श्रमित, थकित एवं आग से काले पड़े हुये शरीर को लिये हुये हरिदास रात्रि के द्वितीय पहर में राजीव की कुटी में पहुँच गया।

राजीव ने चकित होकर पूछा, 'यह क्या हरिदास ?'

किन्तु हरिदास मूर्च्छित होकर राजीव के पैरों के पास गिर पड़ा।

चौदह

राजा विद्यासागर का क्रोध चरम सीमा पर पहुंच गया था। राजीव को वह अब तक अत्यन्त तुच्छ और नगण्य समझता था। वह जानता था कि जिस दिन वह चाहेगा उन्हें कीड़े की भांति मसल कर धर देगा ।

किन्तु, 'अरि छोटो गनिये नहीं' वाक्य का उसे ध्यान ही न रहा था। सचमुच राजा विद्यासागर के सापने राजीव की शक्ति नगण्य ही थी। राजा जिस दिन चाहता उन्हें मसल सकता था। किन्तु—

अत्याचारी और अन्यायी में एक मनोवैज्ञानिक दुर्बलता होती है। अन्याय का तोरण उठाकर वह जय प्राप्ति के लिये अभियान का साहस नहीं कर पाता। सुन्दर लक्ष्य के लिये वाधा-युक्त मार्ग भी सरल हो जाता है।

नैतिक बल पर आधारित लक्ष्य को लेकर राजीव ने जिस अभियान के लिये पग बढ़ाया उसमें उन्हें सफलता मिलती ही गई। कठवर्द्धन

पर भाई का अत्याचार और अनाचार उन्हें सहन न हुआ। उन्होंने जो सहायता का वचन उसे दिया था उसे करने के लिए, एक दिन अपने पच्चीस सुसंगठित एवं दक्ष साथियों को लेकर बड़े कौशल के साथ एकाएक कंठवर्द्धन को घेर लिया। कंठवर्द्धन ने इस आक्रमण का मूल कारण अपने छोटे भाई को ही समझा और उसे मार डालना चाहा। कंठवर्द्धन भाई के समान बली न था। उसे पराजित होता देख राजीव ने स्वयं अपने हाथों से कंठवर्द्धन की हत्या कर डाली तथा मित्रता का नाता पूरा किया।

कंठवर्द्धन के मरते ही सारी जनता और सेना कंठवर्द्धन के आधीन और साथ हो गई। कंठवर्द्धन राजा हो गया।

अब राजीव और निशानाथ ने मिलकर सेना का संगठन प्रारम्भ कर दिया। उन्हें कंठवर्द्धन की सेना, राजा, विद्यासागर की सेना से अधिक दक्ष और शक्ति शाली बनानी था। इस सेना में स्वर्णपुर की पीड़ित प्रजा भी सम्मिलित होने लगी। जोर-शोर से तैयारियाँ होने लगी।

कंठवर्द्धन ने कहा, 'अब हमको स्वर्णपुर पर चढ़ाई कर देना चाहिये। अधिक विलंब ठीक नहीं है।'

कुछ सोच कर राजीव ने कहा, 'यद्यपि शुभ कार्य में देर न करना चाहिये, फिर भी हमको सोच समझ कर कदम बढ़ाना है। पहिले बात तो यह है कि हमारा क्या अपराध राजा विद्यासागर ने किया है यह भी तो स्पष्ट हो जाना चाहिये। किसी देश पर अकारण आक्रमण करना उचित बात नहीं है। यह तो अमानुषिकता है।'

सुकंठ ने कहा, 'वह प्रजा पर अत्याचार करता है।'

राजीव कह पड़े, 'किन्तु हम पर या तुम पर तो उसने किसी प्रकार का अत्याचार किया नहीं। तब वह हमारा अपराधी कैसे हो सकता है।'

सभी लोग असमंजस में पड़ गये।

निशानाथ बोल उठे, 'उसने हमारी भाभी का अपहारण कर के जघन्य पाप किया है। पापी को दंड मिलना चाहिये।'

मुसकराकर राजीव ने कहा, 'किन्तु इसका प्रमाण। यह निश्चित तो है नहीं कि पुनीता का अपहरण विद्यासागर ने ही किया है।

सभी चुप थे।

अंत में हरिदास ने कहा, इस बात का प्रमाण में ढूंढ कर लाऊँगा। मुझे जाने की आज्ञा दी जाय।'

'कंठवर्द्धन ने कहा, 'मैं भी विद्यासागर के राजमहल में घुस कर पुनीता जी का पता लगा कर ला सकता हूँ।'

सुकंठ ने अपना नाम उपस्थित कर दिया।

अंत में वहुत कुछ सोच कर राजीव ने कहा, 'आप लोगों ने मेरे प्रति कृतज्ञता प्रकट की है मैं उसके लिये आप सभी का आभारी हूँ। मैं यह कार्य हरिदास को सौंपना चाहता हूँ।'

हरिदास का चेहरा खिल उठा। बोला 'मैं बड़ा ही सौभाग्यशाली हूँ जो मुझे यह कार्य सौंपा गया। मैं एक सप्ताह के अंदर ही पुनिता जी का पता लगा लाऊंगा। बस अब मुझे आज्ञा दी जाय।

हरिदास उठकर खड़े हो गये। राजीब ने मुसकुरा कर कहा, 'इतनी जल्दी क्या—'

हरिदास बोल पड़े, 'आप ही ने अभी हम लोगों को शिक्षा दी है। कि शुभ कार्य में देर नहीं करना चाहिये। तो फिर बिलम्ब क्यों ?

राजीव मुसकुराकर चुप हो गये।

सुकंठ ने कहा, 'मेरा विचार है कि राजा विद्यासागर भी चुप न बैठा होगा। उसने भी तैयारियाँ प्रारम्भ कर दी होंगी।'

निशानाथ कुछ क्रोधी स्वभाव के थे। बोले, 'मेरा तो उस पर आक्रमण करने के लिये जी उतावला हो रहा है। यदि दादा आज्ञा दें

दें तो मैं आज ही उसके पास जाकर भाभी के प्रति किये गये अपमान का बदला चुका सकता हूँ। वह है किस हवा में ?

उन्हें शांत करते हुये राजीव ने कहा, 'इसमें शीघ्र निर्णय लेने की बात नहीं है निशानाथ। तुम्हें अपनी वीरता दिखलाने का अवसर अवश्य मिलेगा। हरिदास को लौट कर आजाने दो। हम उनके आते ही अभियान कर देंगे।

हरदिास ने जाने का उपक्रम करते हुये कहा, 'तो मैं चला। यदि जीवित रहा तो सेवा में शीघ्र ही उपस्थित हो जाऊंगा।

वह जाने लगा तो राजीव ने उसे पुनीता के नाम एक छोटा सा परिचय-पत्र लिख कर दे दिया।

हरिदास उसी समय चले गये।

उनके जाने के पश्चात् मुकंठ ने कहा, 'राजा विद्यासागर आप पर बौखलाया हुआ है। आपको फंसाने के लिये अवश्य हीं जाल बुन रहा होगा। हम लोगों को सतर्क रहना चाहिये।'

निशानाथ बोल उठे, 'आप लोग निश्चित होकर रहे। मैं रातभर जाग कर दादा का पहरा देता हूँ। मेरे जीते जी दादा का शरीर कोई स्पर्श भी नहीं कर सकता।

राजीव ने परम स्नेहपूर्ण दृष्टि से निशानाथ की ओर देखा। वे धीरे से बोले, 'मेरे ही लिये तो निशानाथ ने वैभव और संपत्ति को लात मार दी। मुझे छोटे भाई की इस अपूर्व भक्ति पर गर्व है।'

× × ×

इन्द्रसेन को बुलाकर राजा विद्यासागर ने कहा, 'तुम अभी जाकर दोनों भाइयों को बंदी बना लो। यह मेरी आज्ञा है।

इन्द्रसेन सिर झुकाये खड़ा रहा।

और अधिक बिगड़ कर राजा ने कहा, 'तुमने उत्तर नहीं दिया इन्द्र। मैं अधिक बेइज्जती सहन नहीं कर सकता। देखते-देखते

एक अदना से आदमी ने राज्य में घुस कर सारा राजमहल फूंक दिया ? नहीं, अब और अधिक सहन नहीं हो सकता।'

इन्द्रसेन ने धीरे से कहा, 'शत्रु को निर्बल समझना हमारी भूल है। हरिनगर के राजा कंठ से इस समय लोहा लेना ज़रा टेढ़ी खीर हो गया है। बड़े ज़ोर-शोर से सैनिक तैयारीयाँ हो रही हैं। प्रतिक्षण आक्रमण की आशंका हो रही है। समझ में नहीं आता कि क्या करूं ?

राजा विद्यासागर कहने लगा, 'यह कायरों की सी बात तुम कर रहे हो इन्द्र। मैं अकेला ही जाकर इन दोनों भाइयों को पकड़ लाने की शक्ति रखता हूँ। कंठवर्द्धन जैसे कीड़े को भी तुम योद्धा समझ रहे हो इंद्रसेन ?'

इंद्रसेन चुप खड़ा रहा।

तभी नौकर ने दयासागर के आने की सूचना दी।

विद्यासागर ने उन्हें आने की आज्ञा दी।

दयासागर ने आकर बड़े भाई का चरण-स्पर्श किया तथा चुपचाप खड़े हो गये।

विद्यासागर ने छोटे भाई को लक्ष्य करके कहा, 'राज्य पर कुछ संकट आ गया है दया सागर। इस समय हमको मिल-जुल कर इसका मुक़ाबला करना हैं।

दयासागर ने विनीमत शब्दों में कहा, 'मैं इसी संबंध में कुछ बात करने की आज्ञा चाहता हूँ दादा।'

गम्भीर होकर राजा ने कहा, 'क्या करना चाहते हो ?'

क्षण भर रुक कर दयासागर ने कहा, 'इस विग्रह को सरलता के साथ समाप्त किया जा सकता है। स्वय हमारी प्रजा ही हमारे विरुद्ध हो रही है। न्याय और न्याय—'

विद्यासागर की आखें क्रोध से लाल हो चली थीं। वे स्फुट स्वर

में बोले, 'तो क्या तुम उन साधारण व्यक्तियों के सामने मुझे झुक जाने की शिक्षा देने आये हो ?'

दयासागर ने कहा, 'मैं झुकने की बात नहीं कहने आया हूँ दादा। मै चाहता हूँ कि इस विग्रह को बढ़ाया न जाय। उनसे संधि कर लेने में अपनी किसी भी प्रकार की हानि नहीं है। जहां तक मैं जानता हूँ उनकी शक्ति हमसे कम नहीं है। दोनों भाई शक्तिशाली, न्याय प्रिय और प्रजा का हित चाहने वाले हैं। हमने ही तो उनकी स्त्री को लाकर उन्हें लड़ने के लिये विवश किया है। हमारा अन्याय—'

राजा विद्यासागर को अब और अधिक सहन न हो सकता था। क्रोध से उनका शरीर कांपा रहा था। वे दांत पीस कर बोले, 'कायर, नीच, क्या तू मेरा भाई होने योग्य है। शत्रु की प्रसंसा कर के मुझे भयभीत करना चाहता है। जा दूर हो जा मेरी आँखों के आगे से—'

कहते-कहते विद्यासागर ने भाई के एक कस कर लात जमाई और बोले, 'जा, अभी मेरे राज्य से निकल जा। फिर मुँह न दिखाना।'

दयासागर अपमानित होकर थोड़ी देर तक खड़े रहे, 'फिर धीरे से कक्ष के बाहर हो गये।

थोड़ी देर तक वातावरण स्तब्ध रहा। स्तब्धता को भंग करते हुये राजा विद्यासागर ने कहा, 'जाओ इँद्रसेन, युद्ध की तैयारियाँ करो। मैं कल ही उन पर आक्रमण करूँगा।'

इंद्रसेन अभिवादन कर के जाने लगा।

विद्यासागर ने स्फुट-स्वर में कहा, 'जरा ठहरो इंद्र। कदाचित युद्ध करने की आवश्यकता ही न पड़े। तुम शेषनाथ को मेरे पास भेज दो।

'जो आज्ञा' कह कर इंद्रसेन चला गया।

शेषनाथ विद्यासागर का चचेरा भाई था। वह महान कूटनीतिज्ञ एवं पारम बलशाली थी।

थोड़ी देर ही में शेषनाथ आ उपस्थित हुआ। राजा विद्यासागर बड़ी देर तक उससे कुछ गुप्त मंत्रणा करते रहे।

वह जाने लगा तो विद्यासागर ने कहा, 'तुम पर मुझे अटूट विश्वास है। काम सतर्कता से करना।

✳

पंद्रह

इधर राजीव की कुटी के चारों ओर सैनिक-शिक्षण के केन्द्र खुले हुए थे। सभी योद्धा तीर-कमान, तलवार, भाले, कृपाण, और अन्य नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से अपने को सुसज्जित कर रहे थे। कंठ-वर्द्धन को सेनापति घोषित कर दिया गया था। चारों ओर धूम मची हुई थी। स्वर्णपुर की प्रतीड़ित प्रजा भी बहुत बडी संख्या में आकर सेना में मिल गई थी। निशानाथ चारों ओर घूम-घूमकर सेना का निरीक्षण कर रहे थे। कुटी के चारों ओर कड़ा पहरा लगा हुआ था।

कुटी के अन्दर राजीव छोटी-सी गद्दी पर बैठे हुये किसी चिन्ता में निमग्न थे। वे रक्तपात पसन्द न करते थे, किन्तु पुनीता का ऐसा प्रश्न था कि वे युद्ध के लिए विवश थे। इसके अतिरिक्त स्वर्णपुर की प्रजा के कष्टों को दूर करने की जिम्मेदारी भी उन्होंने ले रखी थी।

मुकंठ को बुलाकर उन्होंने कहा, 'क्या इस राजा से किसी भी प्रकार से संधि नहीं की जा सकती ?'

सुकंठ राजीव के मुँह की ओर देखने लगा।

राजीव ने कहा, 'यदि व्यर्थ का भयानक रक्त-पात रुक सके तो अच्छा ही है।'

उसी समय हरिदास, कंठवर्द्धन आदि भी कुटी में आकर बैठ गये। निशानाथ पहिले ही आ गये थे।

राजीव ने कहा, 'अब शत्रु से युद्ध होना निश्चित ही सा है। इसमें संदेह नहीं कि इस युद्ध में भीषण रक्त-पात होगा। मेरा विश्वास है कि युद्ध कोई अच्छा कार्य नहीं है। यह स्पष्ट है कि युद्ध बर्बरता का प्रतीक है। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या कोई ऐसा भी उपाय है कि यह युद्ध रोका जा सके ?'

निशानाथ बोला, 'हम अन्याय के विरुद्ध लड़ने जा रहे हैं। इस युद्ध को रोकना पाप को प्रश्रय देना होगा। सिवा युद्ध के और कोई उपाय नहीं है।'

सुकंठ ने कहा, 'इस अत्याचारी और पापी राजा का विनाश बिना युद्ध के न होगा।

हरिदास ने कहा, 'फिर पुनीता जी के उद्धार का कौन-सा मार्ग रह जाता है ?'

कुछ मुस्कराकर राजीव ने कहा, 'क्या किसी प्रकार राजा विद्यासागर से संधि नहीं हो सकती ?'

हरिदास बोला, 'उसे अपनी शक्ति का बड़ा अभिमान है। वह क्यों संधि करेगा ?'

कंठवर्द्धन ने कहा, 'राजीव जी ने बड़े, ऊँचे स्वर की बात कही है। यदि बिना युद्ध के शाँति स्थापित हो सके तो उससे सुन्दर और कोई बात नहीं है। किन्तु केवल हमारे चाहने से सन्धि हो नहीं सकती। जैसा हरिदास ने कहा है उसे अपनी शक्ति का बड़ा अभिमान है। वह कभी संधि के लिये तैयार न होगा।'

हरिदास बोला, 'राजा विद्यासागर के जीवित रहते अन्याय, पाप और अत्याचार का अन्त न होगा ।'

कुछ सोचकर राजीव ने कहा, 'तुम लोग ठीक कह रहे हो किन्तु शत्रु को सचेत कर देना भी तो हमारा धर्म है । हमको एक बार उससे संधिवार्ता अवश्य करना चाहिये ।'

सब चुप रहे । थोड़ी देर पश्चात् निशानाथ ने कहा, 'उस नीच के पास सन्धि का प्रस्ताव कौन लेकर जाने के लिए तैयार होगा ? कौन अपने प्राण हथेली पर रखकर वहाँ जाने का साहस करेगा ?

कुछ देर तक सन्नाटा सा छा गया । स्व० केशवर्द्धन का नवयुवक पुत्र पदवर्द्धन भी अपने चाचा कंठवर्द्धन के साथ वहाँ आया हुआ था । उठ कर बोला, 'यह कार्य मुझे सौंपा जाय । मैं सन्धि-प्रस्ताव लेकर जाने के लिए तैयार हूं ।'

अपने भतीजे पदवर्द्धन का साहस देख कर कंठवर्द्धन गद्गद हो गया । राजीव ने प्रसन्न होकर पदवर्द्धन से कहा, 'मैं तुम्हारे साहस की सराहना करता हूं किन्तु अभी तुम बालक ही हो । यह कार्य किसी योद्धा का है ।'

पदवर्द्धन बोल उठा, 'मुझे योद्धा न समझा जाना मेरा बड़ा भारी अपमान है । मुझे जाने की अवश्य आज्ञा दी जाय ।'

राजीव ने कंठवर्द्धन को ओर देखते हुए कहा, 'तुम्हें तो किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है कंठ ?'

कंठवर्द्धन ने कहा, 'इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है ? यह तो मेरे परिवार के लिए महान् सम्मान की बात है ।'

राजीव ने कहा, 'तो यह निश्चित हुआ कि पदवर्द्धन को राजा विद्यासागर के पास सन्धि का प्रस्ताव लेकर भेजा जाय । मैं समझता हूं......'

तभी एक सैनिक ने आकर सूचना दी कि राजा विद्यासागर के

पास से आया हुआ एक व्यक्ति राजीव से भेंट करना चाहता है।

निशानाथ फौरन बोल उठे, 'उसे फोरन बंदी बनाओ।'

सुकंठ ने कहा, 'वह अवश्य ही शत्रु का कोई गुप्तचर होगा।'

किन्तु राजीव ने गंभीर वाणी में कहा, 'उसे यहाँ आदर के साथ लाया जाय।'

वह व्यक्ति राजीव के सम्मुख उपस्थित किया गया। उसे देखते ही राजीव प्रेम से उसके चिपट गये। उनके मुँह से निकला, 'दयासागर जी, आप—'

सजल नेत्रों के साथ दयासागर ने सारी घटना सुनाते हुए कहा, 'मैं इस प्रकार अपमानित करके निकाला गया हूं। अब तो मैं आपकी ही शरण हूं।'

राजीव ने कहा, 'तुम मेरे छोटे भाई समान हो।'

दयासागर ने कहा, 'मैं एक तुच्छ जीव हूं। आपका भाई होने योग्य नहीं हूँ।'

राजीव ने कहा, 'तुम मुझे भाई से अधिक हो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि राजा विद्यासागर को पराजित करके आपको ही उसके स्थान पर राजा बनाऊँगा। आप सा न्यायशील और सच्चरित्र व्यक्ति मिलेगा कहाँ ?'

राजीव के इस प्रस्ताव का सभी ने समर्थन किया। दयासागर को ही स्वर्णपुर का शासक मनोनीत किया गया।

रात्रि अधिक हो गई थी। सभी लोग सोने का उपक्रम करने लगे।

सुहावनी रात्रि का आनन्द लेने की नीयत से राजीव ने कहा, 'आप लोग विश्राम करें। मैं अभी मैदान में टहल कर सेना की व्यवस्था एवं सैनिकों के विश्राम का प्रबन्ध निरीक्षण करूँगा।

उन्हें अकेला जाते देख निशानाथ ने कहा, 'यदि अनुचित न हो तो मैं भी साथ चलूँ ?'

मुस्कराकर राजीव ने कहा, 'हाँ, हाँ, तुम्हारे साथ चलने से आनंद रहेगा।'

दोनों भाइयों ने घूम-घूमकर सेना के शिविरों का निरीक्षण किया।

राजीव ने कहा, 'कंठवर्द्धन की तैयारी में किसी भी प्रकार त्रुटि दृष्टि गोचर नहीं होती।'

निशानाथ ने कहा, 'हमको अपने सेनापति पर गर्व है।'

सभी लोग सो रहे थे। घोर सन्नाटा सर्वत्र था। राजीव रात्रि का आनन्द लेने के लिए नदी-तट की ओर बढ़ चले। शुभ्र एवं विमल चाँदनी छिटक रही थी। नदी की लोल लहरें रजत-किरणों को आत्मसात किये हुए क्रीड़ा में मधुर घोष कर रही थीं।

राजीव और निशानाथ तट पर पड़े हुये एक प्रस्तर-खंड पर बैठ गये।

राजीव ने कहा 'निशानाथ, शरद ऋतु के आगमन की सूचना देते हुये ये कांस के वृक्ष कैसे शोभायमान हो रहे हैं। ये वर्षा ऋतु की समाप्ति के प्रतत से हो रहे हैं। आकाश भी निर्मल है और धरती भी। वर्षा के जल से भी भरे हुये ये सरोवर कैसे सुन्दर मालूम हो रहे हैं जैसे सज्जनों सारे सदगुणों ने को सिमेट कर अपने हृदयों में भर लिया हो।'

निशानाथ भी प्रकृति -सुन्दरी में खो से गये थे। वे उठकर नदी की ओर बढ़े। कगार के निकट एक टीला था। निशानाथ उसी पर चढ़ गये। वहाँ का दृश्य और भी सुन्दर था। मलियानल बह कर शरीर में सिहरन उत्पन्न करता था। निशानाथ उसी टीले पर बैठे रहे। एकाएक उन्हें होश आया कि भाई को नीचे प्रस्तर-खन्ड पर छोड़े हुये काफी देर हो गई है। वे कदम बढ़ाते हुये नीचे उतरे, किन्तु शुभ्र चाँदनी के प्रकाश में भी उन्हें भाई न दिखाई पड़े। वे झपटे हुये उसी प्रस्तर-खंड के पास पहुँचे तथा उनकी दृष्टि इधर-उधर दौड़ कर भाई को खोजने

लगी। उन्होंने 'दादा-दादा' कह कर कई बार पुकारा भी, किन्तु शब्द केवल प्रतिध्वनित होकर रह गये। उन्होंने समझ लिया कि दादा अवश्य ही कुटी की ओर चले गये हैं।

वे जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाने लगे। किन्तु अभी वे चार कदम भी आगे न बढ़ पाये थे कि दो ओर से लगभग २०-२५ सशस्त्रों सैनिकों ने आकर उन्हें घेर लिया। निशानाथ कुछ बोल भी न सके। उन्हें कस कर बांध लिया गया।

कारागार में पहुंच कर उन्होंने देखा कि वह एक छोटी सी कोठरी है और जिन दादा को वे खोज रहे थे वे वहां पहिले से ही मौजूद हैं।

उन्हें देख कर राजीव ने कहा 'निशानाथ!'

और—

निशानाथ के मुंह से केवल निकला 'दादा—आप—?'

सोलह

राजीव और निशानाथ को कुटी से गायब देखकर सवेरे से ही सारी सेना में हलचल मच गई।

कुटी के पहरेदारों ने बतलाया कि वे रात्रि में घूमने बाहर निकल गये थे। तब से लौट कर आये ही नहीं। हम लोग एक क्षण के लिये भी यहाँ से हटे नहीं।

समस्या यह थी कि उन्हें कहाँ ढूंढा जाय ? दोपहर चढ़ चुकी थी किन्तु अभी तक वे लौटे ही न थे।

कंटवर्द्धन ने कहा 'यह सब शत्रु की ही कार्यवाही मालूम पड़ती है।'

हरिदास ने कहा, 'मेरा मत है कि दोनों भाई निश्चित रूप से राजा विद्यासागर के कारागार में पहुँच गये हैं। अब समस्या टेढ़ी हो गई।'

कुछ दुखी होकर दयासागर ने कहा 'वह सब कुछ कर सकता है। शीघ्र ही कोई उपाय करना पड़ेगा।'

कंठवर्द्धन किंचित रोष के साथ बोले 'अब फौरन आक्रमण कर देने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। इसमें देर ठीक नहीं।'

कुछ सोच कर सुकंठ ने कहा, 'मेरी राय है कि हम में से कोई व्यक्ति चुपचाप राजधानी में प्रवेश कर दोनों भाइयों की खोज करे। जल्दबाजी से हानि भी हो सकती है।'

सभी लोग हरिदास की ओर देखने लगे। अंत में कंठवर्द्धन ने कहा 'यह काम तो हरिदास ही—'

और—

हरिदास उठ कर बोले 'मैं निश्चित रूप से उन्हें खोज करने जाउंगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि मैं उन्हें साथ ही लेकर लौटूंगा।'

सभी के चेहरे खिल गये। पास में चरवाह भी बैठा हुआ था। उसका नाम भीखम था।

वह उठ कर बोला 'मैं भी हरिदास जी के साथ जाऊँगा। निशानाथ जी ने एक बार मेरे प्राण बचाये हैं। मैं भी उन्हें बचाने के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा दूंगा।'

यह निर्णय किया गया कि हरिदास और भीखम राजधानी में खोज के लिए जायेंगे। यह भी तय किया गया कि कंठवर्द्धन कुछ सैनिकों को छद्म वेश में लेकर इन लोगों के आस-पास रहेंगे।

सुकंठ ने कहा, 'किन्तु हमको आक्रमण करने के लिए भी तैयार रहना चाहिये। न जाने किस समय आक्रमण करना पडे।

कंठवर्द्धन ने कहा 'अपनी अनुपस्थिति में मैं सुकंठ को ही सेनापति नियुक्त करता हूँ। ये समय पर जैसा उचित समझेंगे करेंगे।'

निर्णय के पश्चात हरिदास और भीखम एक ओर फौरन चल दिये। कंटवर्द्धन कुछ विश्वस्त सैनिकों को लेकर दूसरी ओर रवाना हो गये।

उस समय संध्या का अंधकार दिन के प्रकाश को निगलने की तैयारियाँ कर रहा था।

० ० ०

प्रसन्न होकर राजा विद्यासागर ने कहा, 'शाबाश शेषनाथ। तुमने मेरे मार्ग का कांटा ही निकाल दिया। जल्लादों को आज्ञा दो कि दोनों भाइयों के सिर काट कर दुर्ग के बाहर लटका दे।'

शेषनाथ चुप रहा।

राजा विद्यासागर ने फिर कहा 'शत्रु को हाथ में पाकर विलम्ब करना भारी भूल है। उनका आज ही वध कर दिया जाय।'

शेषनाथ ने कहा 'किन्तु कुछ मेरी भी प्रार्थना है महाराज।

प्रसन्न होकर राजा ने कहा, 'तुम्हारी प्रत्येक माँग पूरी की जायगी। तुम निर्भय होकरकहो।'

शेषनाथ ने कहा 'मैंने श्री चंडिका को नर-बलि देने का प्रण किया है, यदि महाराज—

अत्यंत प्रसन्न होकर राजा ने कहा, 'बहुत सुन्दर। मैं अति प्रसन्न हूँ। तुम दोनों भाइयों की मां दुर्गा के आगे बलि दे दो। बहुत ही सुन्दर रहेगा।'

प्रसन्न होकर शेषनाथ ने कहा, 'मैं महाराज का बड़ा कृतज्ञ हूँ। मेरी मनोकामना पूरी हो गई।'

राजा ने कहा 'यह शुभ कार्य कल तक सम्पन्न हो जाना चाहिए। इन दोनों वेदियों को एक विशेष स्थान पर रखा गया है जिससे इस घटना की राज्य में किसी को खबर न हो। तुम्हें तो सब कुछ ज्ञात ही है। इस बलि की भी किसीको सूचना न होना चाहिए।'

सिर झुका कर शेषनाथ ने कहा, 'इसकी आप चिन्ता न करें। सारा कार्य समाप्त हो जाने पर ही आपको सूचित करूंगा।'

वह चला गया।

उसके चले जाने के पश्चात राजा विद्यासागर सोचने लगा, 'यह कांटा तो इस प्रकार निकल गया, किन्तु कंठवर्द्धन को भी ठिकाने लगाकर अपने राज्य की सीमा का विस्तार भी करना है। यह कंठ-वर्द्धन भी मेरे लिये एक कांटा ही है - इसके भाई केशवर्द्धन से मैं एक बार पराजित भी हो चुका हूँ। एक मास तक मैं उसके कारागार में बंदी बनकर रह चुका हूं। अब अवसर मिल रहा है तो क्यों न उसके राज्य को हड़प जाऊं।'

प्रतिहारी ने आकर सूचना दी कि राज्य मंत्री आपसे मिलना चाहते हैं।

राजा विद्यासागर ने स्वीकृति दे दी।

थोड़ी देर में राज्य-मंत्री ने आकर अभिवादन किया।

राज्य-मंत्री ने निवेदन किय, 'अन्नदाता, चारों ओर से जन-बिद्रोह के समाचार आ रहे है। स्थान स्थान पर शत्रु के गुप्तचर घुस कर शान्ति भंग कर रहे हैं। सेना में भी विद्रोह होने के समाचार मिल रहे हैं।'

कुछ अप्रसन्न होकर राजा विद्यासागर ने कहा, 'यह अव्यवस्था किसने उत्पन्न की है। नगर कोतवाल को बुलाकर दंड दीजिए। विद्रो-हियों को भीषण दंड दिया जाय। सेनापति क्या कर रहे हैं? जो सिर उठा रहे हैं उन्हें कुचल क्यों नहीं दिया जाता। आखिर यह सब क्यों हो रहा है?'

राज्य-मंत्री डर कर बोला, 'जनता को यह कह कर भड़काया जा रहा है कि इस राज्य का अन्त होने वाला है। मैं क्या कहूँ अन्नदाता ऐसा प्रतीत होता है कि इस राज्य की सारी प्रजा शत्रु से मिल गई है। हम लोगों ने न जाने कितने व्यक्तियों को कारगार में बन्द कर दिया है।

'बिगड़ कर राजा बोला 'उन्हें कारागार में क्यों बन्द किया? फांसी

पर क्यों नहीं चढ़ा दिया ? उन्हें कीड़े-मकोड़ों की भांति कुचल क्यों नहीं दिया ?'

राज्य-मंत्री चुप हो गया।

राजा ने कहा, 'कायरता प्रदर्शित करने से राज्य के कार्य नहीं चला करते मंत्री जी। जनता का अर्थ है मूर्ख और मूर्खों को नियंत्रित करने के लिये राज दन्ड की आवश्यकता होती है। आदि काल ही से धनी निर्धनों पर शासन करते आये हैं। यह शाश्वत नियम कभी बदल नहीं सकता।'

सिर झुका कर राज्य-मंत्री ने कहा, 'आप ठीक कह रहे हैं अन्नदाता ऐसा ही होगा।

राजा कहता गया, 'मैंने संसार की सारी विद्याओं का अध्ययन और मनन किया है। मैं जानता हूँ कि निर्बल को जीने का कोई अधिकार नहीं है। उनका तो इतना अधिक शोषण करते रहना चाहिये कि उनके शरीर में रक्त ही न रहे। मैं समता और दया का सिद्धान्त नहीं मानता। यदि राज्य के सुप्रबन्ध की आवश्यकता हो तो राज्य के निर्बलों को कुचल दो। मैं निर्धनों और निर्बलों से घृणा करता हूँ।'

राज्य-मंत्री ने कहा, 'तो फिर मेरे लिये क्या आज्ञा होती है ?'

राजा विद्यासागर ने कहा, 'कुचल दो, जो भी सिर उठाये उसे बुरी तरह से कुचल दो। विद्रोहियों को लूट लो, उनके घरों में आग लगा दो। तुम राजा विद्यासागर के मंत्री हो। कायरता मत प्रदर्शित करो।'

'जो आज्ञा कह कर मंत्री चला गया।'

*

सत्रह

निर्जन स्थान....

वृक्षों के झुरमुट में किसी विशाल मंदिर का शिखर दूर ही से चमचमाता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है। निकट पहुँचने पर मंदिर की शालीनता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। बाहर का विस्तृत प्रांगण घोर सन्नाटा होने के कारण एक विचित्र सा वातावरण प्रस्तुत कर रहा है। मन्दिर के अन्दर श्री चंडिका की विशाल मूर्ति आने वाले को भयातुर सा कर देती है। सिंह वाहिनी श्री चंडिका के हाथ में एक खप्पर है जिसमें कदाचित रुधिर भरा हुआ है। लम्बी -लपलपाती हुई बड़ी सी जिह्वा भी रक्त में डूबकर लाल हो रही है।

मन्दिर में सन्नाटा है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अभी थोड़ी देर पूर्व ही प्रतिमा को महकते हुये पुष्प-हारों से कोई सजा गया है। प्रतिमा के आगे एक चमचमाता हुआ बड़ा सा चाँदी का थाल रक्खा हुआ है और पास ही लपलपाता हुआ एक लम्बा-चौड़ा खड्ग सिंहासन

के सहारे टिका हुआ है।

मन्दिर धो-पोंछ कर साफ किया गया है।

किन्तु यह सन्नाटा अधिक देर तक न रह सका। पूर्व की ओर कुछ धूल उड़ती सी दिखलाई दी। बीस-पच्चीस व्यक्ति पैदल ही झपटे हुये मंदिर की ओर चले आ रहे हैं। सभी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं तथा सभी के चेहरे झीने कपड़ों से ढंके हुये हैं।

मन्दिर के प्रांगण के पास पहुंच कर वे रुके। उनमें से एक ने दूसरे को सम्बोधित कर के कहा, 'यह क्या ? अभी तक वे पहुँचे नहीं ?'

दूसरा धीरे से बोला, 'मालूम तो कुछ ऐसा ही होता है। फिर—'

पहिला बोला, 'तो फिर प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।'

वे कदाचित अभी कुछ निर्णय न कर पाये थे कि पश्चिम की ओर धूल उड़ती दिखाई पड़ने लगी। अन्य लोगों के आने का आभास पाकर ये लोग सतर्क होने लगे। कुछ वृक्षों के झुरमुट में जाकर छिप गये। कुछ प्रतिमा के पीछे छिपे और कुछ मन्दिर की परिक्रमा में। सन्नाटा जैसा था वैसा फिर हो गया।

पश्चिम की ओर से आने वाले मन्दिर के पास आकर रुक गये। आगे-आगे घोड़े पर शेषनाथ था। पीछे एक रथ था जिसे चारों ओर से सैनिक घेरे हुये थे।

रथ रुका। सैनिकों ने सहारा देकर दो बंदियों को उतारा जो स्पष्टरूप से राजीव और निशानाथ थे। उनके हाथ बुरी तरह रस्सियों से बंधे हुये थे। सैनिक उन्हें सहारा देकर प्रांगण में ले गये।

शेषनाथ ने मन्दिर के अन्दर जाकर प्रतिमा को प्रणाम किया और घुटने टेक कर उपासना में व्यस्त हो गया।

थोड़ी ही देर में सैनिक राजीव और निशानाथ को मन्दिर के

अन्दर ले गये। उनके बन्धन खोल दिये गये थे।

राजीव को सम्बोधित करके शेषनाथ ने कहा 'यह तुम्हारा सौभाग्य है कि मां चंडिके तुम्हारी बलि को ग्रहण कर रही है। तुम्हें प्रसन्न होना चाहिये।'

राजीव ने गंभीर वाणी में कहा, 'तुम झूठ बोल रहे हो मेरा इस बलि-प्रथा में किसी भी प्रकार का विश्वास नहीं है। जिन्हें हम माँ कहते हैं वे कभी हमारे रक्त की प्यासी नहीं हो सकतीं।'

शेषनाथ मुस्कराकर बोला, 'किन्तु मेरा विश्वास तो ऐसा ही है।'

राजीव ने फौरन उत्तर दिया, 'तो फिर तुम्हें अपनी ही बलि चढ़ाना चाहिये। जिनका इस बलि-प्रथा से विरोध है उनकी ही बलि चढ़ाने से माँ चंडिका प्रसन्न नहीं हो सकतीं।'

शेषनाथ ने कहा, 'यह तो तुम अपने प्राण बचाने के लिये कह रहे हो।'

राजीव ने कहा, 'तो फिर मेरे लिये इसमें सौभाग्य की बात क्या हो सकती हे। मैं तो देवी को स्पष्ट रूप से अप्रसन्न देख रहा हूँ।'

कुछ रुष्ट होकर शेषनाथ ने कहा, 'बक बक मत करो। बलि के लिये तैयार हो जाओ।

शेषनाथ ने हाथ में खड़ग उठा लिया। वह जोर-जोर से मंत्रोच्चार करने लगा था।

उसने आज्ञा के स्वर में कहा, 'देवी के चरणों में शीश झुकाओ।'

राजीव ने अपना सिर माँ चंडिका के चरणों मे झुका दिया।

शेषनाथ ने देवी को प्रणाम करके खड़ग ताना।

'झन्न' से दूसरा खड़ग इस खड़ग में टकरा गया।

हरिदास सामने खड़ा था।

शेषनाथ ने फिर सम्भल कर वार करना चाहा, किन्तु हरिदास के

खड्ग के वार से उतरा शीश भुट्टा सा कट कर प्रतिमा के चरणों के निकट जा गिरा।

'जय भवानी की' घोष हुआ और सैनिकों ने बाहर निकल कर राजीव और निशानाथ को तलवारें पकड़ा दीं।

बाहर और भीतर तुमुल युद्ध होने लगा। थोड़ी देर में शेषनाथ के सैनिक भाग खड़े हुये।

हरिदास ने उसी रथ में राजीव और निशानाथ को चढ़ा दिया एक बार फिर 'जय चंडिके माँ' का घोष हुआ और रथ को घेर कर सैनिक उसी ओर द्रुत गति से बढ़ गये जिधर से आये थे।

*

अठारह

कंठवर्द्धन के चले जाने से सैनिक तैयारियों में विराम सा लग गया था। सुकंठ के लाख प्रयत्न करने पर भी सैनिक काबू में न रह सके। वे प्रायः दस-बीस की टुकड़ी में राजधानी के अंदर घुस जाते और लूट मार कर के फिर लौट आते थे। कोई नियंत्रण रखने वाला न था। दो चार सैनिक पकड़े भी गये थे।

सुकंठ परेशान हो गया। पदवर्द्धन ने कहा, 'आप चिंतित न हों। चाचाजी अवश्य सफलता प्राप्त करके लौटेंगे।

सुकंठ ने कहा, 'सैनिकों की मनमानी देख कर मेरा हृदय बैठने सा लगता। यदि कहीं शत्रु ने आक्रमण कर दिया तो मुसीबत खड़ी हो जायगी।'

तभी आ गये दयासागर। उन्होंने आते ही कहा, 'मुझे सूचना मिली है कि किसी स्थान पर कंठवर्द्धन और राज्य के सैनिकों में गहरी

मुठभेड़ हुई है। मैं कह नहीं सकता कि उसका परिणाम क्या हुआ है। यह भी सुना है कि भीखम पकड़ लिया गया है।'

मुकंठ बोला, 'यह तो बुरा समाचार है। तब भीखम के प्राण बचते नजर नहीं आते।'

दयासागर ने कहा, ' आप इतना घबड़ाइये नहीं। राजीव और निशानाथ को पराजित करना सरल बात नहीं है। साथ में कंठवर्द्धन जी तो हैं। आप भयभीत क्यों हो रहे हैं?'

सुकंठ ने कहा, 'यहाँ के सैनिकों की दशा आप देख ही रहे है? यदि आक्रमण हो गया तो—'

दयासागर बोल उठे, 'यदि आक्रमण हो गया तो हम लोग डट कर लड़ेंगे। हम क्या मोम के बने हुये हैं?'

पदवर्द्धन बोल उठा, 'आप व्यर्थ ही में इतना घबड़ा रहे हैं। चाचा जी के रहते—'

तभी कुटी के बाहर शोर-सा मचने लगा। राजीव, निशानाथ, कंठ-वर्द्धन एवं हरिदास सामने आकर खड़े हो गये। आनन्द के अतिरेक से सुकंठ गद्गद हो गये।

बाहर लौटे हुये सैनिकों की भीड़ थी। उनमें कुछ घायल भी हो गये थे।

पदवर्द्धन के मुँह से निकला, 'और भीखम—'

हरिदास कहने लगा, 'यही तो एक दुखद घटना हो गई। जिस समय हम लोग युद्ध में रत थे, उस समय कुछ सैनिक भीखम जी को पकड़ ले गये।'

सुकंठ ने कहा, 'यह तो बड़ा बुरा हुआ।'

हरिदास कहने लगे, 'हम लोग अब शीघ्र ही शत्रु पर आक्रमण करेंगे। भीखम जी सचमुच विपत्ति में पड़ गये हैं। हम लोग उन्हें छुडाने की चेष्टा करेंगे।'

इस घटना से सभी दुखी थे ।

निशानाथ ने कहा, 'अब हम क्षण भर भी नहीं रुक सकते । हमको शीघ्र ही आक्रमण करके इस दंभी और दुष्ट राजा को पाठ पढ़ाना ही पड़ेगा ।'

कंठवर्द्धन बोले, 'हम कल ही अभीयान करेंगे । भीखम जी के प्राण बचाने का और कोई उपाय नहीं है ।'

धीरे से राजीव ने कहा, 'किन्तु एक बार तो राजा के पास संधि का प्रस्ताव भेजना ही चाहिये । '

निशानाथ को भाई की यह संधि-वार्ता अच्छी न लग रही थी । किन्तु वे चुप रहे ।

राजीव ने सुकंठ की ओर देखा । सुकंठ बोल उठा, 'मैं संधि-प्रस्ताव लेकर जाने के लिये तैयार हूँ ।'

अब निशानाथ विवश होकर बोल उठे, 'मैं नहीं समझ पाता कि हम संधि प्रस्ताव लेकर उस दंभी के पास क्यों जायें ? अभिमान की मदिरा से चूर, अन्याय का प्रतीक, अत्याचार का सजीव इतिहास—वह तो वध करने योग्य है ।'

राजीव ने कहा, 'हमको पाप से घृणा करना चाहिये, पापी से नहीं—'

बीच ही में निशानाथ बोल उठे, 'पापी के उन्मूलन से ही पाप का उन्मूलन होता है । पाप स्वयं कोई वस्तु नहीं है । वह तो केवल एक अव्यक्त परिभाषा है । परिभाषा का समाज और देश पर प्रभाव नहीं पड़ता । विष एक घातक वस्तु है, किन्तु उसकी घातकता तभी सार्थक है जब कोई उसका पान करे । दंड विष को तो नहीं मिलता उसका परिणाम तो पान करने वाले की बुद्धि का फल है । अतएव पापी को बिना दंड दिये पाप का उन्मूलन असम्भव है ।'

मुस्कराकर राजीव ने कहा, 'शत्रु को सचेत करके मारना हमारी

परम्परा है। यह शौर्य का प्रतीक भी है। संधि-प्रस्ताव हमारी निर्बलता का प्रतीक नहीं हो सकता।'

निशानाथ ने कहा, 'आप हमारे पथ-प्रदर्शक हैं दादा, किन्तु मैं यह अनुभव करते चला आ रहा हूँ कि यदा-कदा अनुचित और अनुपयुक्त को भी प्रश्रय दे देते हैं। आपका गृह-त्याग भी इस बात का एक उत्कृष्ट नमूना है।

राजीव उसी प्रकार मुस्कराते हुये बोले, 'तुम्हारा कहना किन्हीं अंशों तक ठीक है निशानाथ, किन्तु संसार में मर्यादा की भी परम्परा है। तुम इसे अंध-विश्वास भी कह सकते हो। किन्तु तुम अभी उसके तत्व तक नहीं पहुँच सके हो। मर्यादा ही मनुष्य के चरित्र का भूषण है। मैंने गृह-त्याग द्वारा पिता की, माता की, कुल की तथा धर्म की मर्यादा सुरक्षित रक्खी है। क्षणिक आवेश, लोभ, क्रोध और सुख पर मर्यादा न्यौछावर नहीं की जा सकती।'

निशानाथ चुप रहे।

सुकंठ ने खड़े होकर कहा, 'तो फिर मुझे आज्ञा दीजिये। संधि-प्रस्ताव प्रस्तावित करके मैं शीघ्र ही लौटूँगा।'

राजीव ने कहा, 'किसी संकट की तो आशंका नहीं कर रहे हो सुकंठ ?'

सुकंठ निर्भिक भाव से बोल उठा, 'आशंका कैसी ? सद् कार्य में प्राणों का बलिदान जीवन का चरम लक्ष्य है। मैं मृत्यु से नहीं डरता।'

राजीव कुछ विचारने लगे। अवसर से लाभ उठा कर पदवर्द्धन ने कहा, 'एक प्रार्थना मेरी भी है ?'

राजीव ने कहा, 'तुम्हारी सभी प्रार्थनायें पूरी की जायेंगी पद-वर्द्धन।'

पदवर्द्धन ने कहा, 'मेरी प्रार्थना है कि यह कार्य मुझे सौंपा जाय। मैं वहाँ जाने के लिये बड़ा ही लालायित हूँ। राजा विद्यासागर मेरे

पिता के पास बंदी के रूप में रह चुका है। मेरी और उसकी अच्छी तरह निपटेगी।'

राजीव ने सुकंठ की ओर देखा। सुकंठ ने कहा, 'मुझे कोई आपत्ति नहीं हैं। मैं तो आज्ञा का दास हूँ।'

अंत में दूत के रूप में पदवर्द्धन का ही विद्यासागर के पास जाना निश्चित हुआ।

राजीव ने पदवर्द्धन से कहा, 'किन्तु अपने पद की मर्यादा का ध्यान रखना राजकुमार। राजा विद्यासागर बड़ा ही नीति-कुशल और वार्ता में पटु है। उसकी बातों में मत आ जाना।'

पदवर्द्धन ने कहा, 'आपकी आज्ञानुसार ही कार्य होगा। मर्यादा की रक्षा मेरा कर्तव्य होगा। अच्छा, तो फिर मैं चला।'

पदवर्द्धन ने झुक कर राजीव को प्रणाम किया तथा राजधानी की ओर चल दिया।

कंठवर्द्धन ने कहा, 'अब हमको आक्रमण की तैयारी करनी चाहिये। स्वर्णपुर का मंद बुद्धि राजा कभी संधि के लिये तैयार न होगा।'

निशानाथ ने कहा, 'भाभी को इस प्रकार संकट में डाल कर हम और अधिक नहीं रुक सकते। अब सब कुछ मेरी सहन-शक्ति के बाहर होता चला जा रहा है। मैं अब न रुक सकूँगा।'

कंठवर्द्धन ने कहा, 'पदवर्द्धन के लौटते ही आक्रमण कर दिया जाय। दस-पांच दिन के अंदर ही हम उसको पीस कर रख देंगे। मैं विद्यासागर की शक्ति को अच्छी तरह जानता हूँ।'

सुकंठ बोल उठा, 'किन्तु शत्रु को कभी छोटा न समझना चाहिये। रुद्रसागर और इन्द्रसेन परम बलशाली और युद्ध-कौशल में परम पटु हैं। इन्हें पराजित करना साधारण कार्य नहीं है। विद्यासागर की चतुरंगिणी सेना अजेय सी है। सब कुछ सोच-समझ कर करना है।'

कंठवर्द्धन ने कहा, 'अजेय तो शेषनाथ भी था किन्तु हरिदास के

एक ही वार ने उसे धरती पर सदा के लिये सुला दिया। सुनिये सुकंठ जी, जिस समय हमारी सेना आक्रमण करेगी उस समय विद्यासागर की सेना भाग खड़ी होने के अतिरिक्त और कुछ न कर सकेगी। हमारे राजीव जी एक ही वार में अभिमानी विद्यासागर को समाप्त करेंगे।'

सुकंठ चुप रहा।

निशानाथ ने कहा, 'इस युद्ध में हमारी विजय निश्चित है। संसार ने विद्यासागर को अजेय समझ रक्खा है। किन्तु पाप बड़े-बड़े योद्धाओं को निर्बल बना देते है। राजा विद्यासागर ने भाभी का अपहरण करके जघन्य पाप किया है। इस पाप ने उसे मानसिक दुर्बलता प्रदान की है। अब वह हमारे सामने टिक नहीं सकता।'

राजीव केवल मुस्कराते ही रहे।

*

उन्नीस

रंगपुर का सुपरिचित कक्ष—

कान्ता और वागीश शास्त्री परस्पर धीरे-धीरे बात कर रहे हैं।

वागीश शास्त्री ने कहा, 'मैंने जो कुछ भी किया तुम्हारे लिए कान्ता। तुम्हारे ही लिये मेरा यह जीवन उत्सर्ग हो गया। तुम्हें मालूम है कि मेरे पास क्या नहीं था—धन, संपत्ति, वैभव सभी कुछ। अपनी बुद्धि-बल से मैं क्या नहीं हो सकता था? किन्तु आज मैं केवल एक संयासी मात्र हूँ—ऐसा संयासी जिसने प्रेम के अतिरेक से संयास को अपनाया किन्तु फिर सब कुछ त्याग कर संयास की मर्यादा को आभूषण रक्खा।'

कान्ता नीचा सिर किये सब कुछ सुन रही थी।

शास्त्री जी कहते गये, 'जानती हो यह सब त्याग, तपस्या और उत्सर्ग किसके लिये था कान्ता? यह सब था तुम्हारे लिये। किन्तु मैंने कभी तुम्हें प्राप्त करने की चेष्टा नहीं की। केवल एक आकाँक्षा रही

हृदय में—तुम्हें राजरानी बनाने की, तुम्हें उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाने की—यही था न ?'

कान्ता ने एक निश्वास ली और चुप रही।

शास्त्री जी फिर कहने लगे, 'कितना निराला रहा मेरा प्रेम ?··· खैर, अब उन सब बातों का क्या अर्थ हो सकता है। तुम्हे पुनीत पुष्प-प्रतिमा एवं उन्नत पदासीन देखने की मेरी इच्छा पूर्ण हो गई। तुम्हारी सी निष्कलंक और नवल धवल चरित्र की नारी आज धरती पर कौन है ?···किन्तु तुमने···'

कान्ता कह पड़ी, 'आपके संकेतों पर चल कर मैं इस स्थान तक पहुँची हूँ। किन्तु पुरुष सदा से नारी पर ही सारा दोष धरते आये हैं। यदि राजेन्द्र ने आपका अपमान किया, संपत्ति को लात मार दी तो फिर इसमें मेरा दोष ?····मैं नहीं समझ पाती कि आप अब मुझसे चाहते क्या है ?'

चतुर खिलाड़ी हँसा। बोला, 'नारी तुम धन्य हो। तुम्हें समझना पुरुष के मान का रोग नहीं। तुम जिसे प्यार कर सकती हो उसे मार भी सकती हो, जिसे मार सकती हो उसे प्यार भी कर सकती हो।'

अब कान्ता का मुँह खुला, 'तो आपने नारी की परिभाषा समझी है ?'

हँस कर शास्त्री जी ने कहा, 'मैंने जो भी समझा है खूब समझा है। मैं मानता हूं कि नारी स्नेह की वस्तु है तिरस्कार की नहीं। उसका हृदय कोमल है और उस कोमलता के भीतर एक पाषाण छिपा हुआ है। नारी सहज ही में अपनी बनाई जा सकती है किन्तु एक बार वह जिसकी हो जाती है फिर वह उसे छोड़ नहीं पाती। वह पाषाण से भी अधिक दृढ़ और कठोर हो जाती है। नारी का प्रेम प्राप्त करने के लिए पुरुष को अपने में उसी पाषाणत्व का सृजन कर लेना चाहिये जिसे सृजनहार ने नारी को स्वभावतः प्रदान किया है।'

कान्ता कुछ गंभीर होकर बोली, 'मैं आपसे सहमत नहीं हूं। आप नारी को क्या समझेंगे ? नारी अपने ही दृष्टिकोण से पुरुष को देखती है, और यही उसकी सब से बड़ी भूल है। मैं आपसे पूछती हूँ कि आखिर जब आप मुझसे प्रेम करते थे तो उस प्रेम को मुझ पर व्यक्त न करके आपने कौनसा ऊँचा लक्ष्य प्राप्त कर लिया है। क्षमा करें यदि आप तो मैं कहूँगी कि आप ने इस प्रकार मेरा अहित ही किया है।'

शास्त्री जी का चेहरा कुछ उग्र सा हो गया। वे स्फुट-स्वर में बोले, 'मैंने तुमसे ले ही क्या लिया है कान्ता। तुम्हारे चरित्र को ऊँचा उठाने के लिये अपनी ही आत्मा का तो हनन किया है। इस तरह के निष्काम प्रेम के उदाहरण संसार को ढूँढे भी न मिलेंगे। अच्छा, तो मैं अब जा रहा हूँ। कदाचित् ही जीवन में अब तुमसे भेंट हो सके।'

वे उठ कर खड़े हो गये। कान्ता ने सोचा कि यह आवश्यकता से अधिक आगे बढ़ गई है। वह बोली, क्या नाराज हो गये ?'

शास्त्री जी ने एक लम्बी सांस लेकर कहा, 'तुम क्या समझ सकोगी मेरे हृदय की व्यथा। तुम नारी हो न ? नारी अपनी है किन्तु वह कब पराई हो जायेगी यह कोई नहीं बता सकता। नारी प्यार की वस्तु है किन्तु उसकी गहराई में उतरना एक भयंकर भूल है। उसे कभी निकट से देखने की चेष्ठा न करो। मैं तुम्हें प्यार करता हूँ किन्तु जीवन में कदाचित ही मैं तुम्हारे निकट आने की चेष्टा करूँ। मैं जा रहा हूँ कान्ता।'

कान्ता के मुँह से निकला, 'कहाँ ?'

शास्त्री जी क्षण भर रुक कर बोले, 'प्रेम-यज्ञ में अंतिम आहुति देने। तुम्हारे विद्वान पुत्र ने संपत्ति पाकर भी जिसे राजीव को जाकर सौंप दिया उसका उद्धार करने।'

कान्ता आश्चर्य के साथ शास्त्री जी के मुँह की ओर देखने लगी। शास्त्री जी कहते गये, 'उस मूर्ख राजेन्द्र ने राजीव से भेंट की तथा सारी

सम्पत्ति उसे सौंप दी । स्वर्णपुर का राजा विद्यासागर राजीव की स्त्री पुनीता पर मुग्ध था। उसने पुनीता को ले जाकर अपने घर में डाल लिया है। अब दोनों में घोर लड़ाई छिड़ी हुई है।'

कान्ता किंचित चिंतित होकर बोली, 'तो आप वहाँ जाकर क्या करेंगे ?'

शास्त्री जी ने कहा, 'मैं राजा विद्यासागर का ही एक पुत्र हूँ—वह पुत्र जिसका त्याग जन्म होते ही कर दिया गया था। मैं ज्योतषियों के कथनानुसार मूल-नक्षत्र में उत्पन्न हुआ था। पिता ने अनिष्ट के भय से नदी में फेंक दिया था। एक मल्लाह ने मेरा पालन-पोषण किया इतने बड़े विद्वान का पुत्र होने के कारण विद्या और बुद्धि से मैं संस्कृति था। 'मैंने काशी को अपना केन्द्र बनाया। एक बार काशी ही में मेरी भेंट अचानक पिता से हो गई। मेरे जन्म और पालन-पोषण का रहस्य उन्हें मेरे पालव्द मल्लाह से मालूम पड़ गया था। मुझे अटूट धन प्रदान करके उन्होंने मुझे स्थापित किया। 'मैंने ज्योतिष, युद्ध-कला तथा इस प्रकार की अनेक कलाओं में दक्षता प्राप्त की है। आज पिता पर संकट है, मैं उनकी सहायता करूँगा। इसके अतिरिक्त—'

कहते-कहते शास्त्री जी चुप हो गये।

कान्ता ने कहा, 'इसके अतिरिक्त—'

शास्त्री जी ने कहना प्रारम्भ किया, 'इसके अतिरिक्त एक बात और है। संसार में दो ही व्यक्ति मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं—एक पिताजी और दूसरी तुम। राजेन्द्र ने जो गलती की है उसका मुझे प्रतिकार करना है। मैं राजीव का विनाश चाहता हूँ। वे पिता जी के शत्रु है और मेरे भी। मैं स्वर्णपुर जा रहा हूँ। राजीव और निशानाथ को मृत्यु की गोद में सुलाकर मैं पिता को भी निष्कंटक करूँगा और तुम्हें भी। इसके पश्चात् किसी पर्वत-कन्दरा में शेष जीवन व्यतीत करूंगा। मैं अब चल रहा हूँ, मेरी और तुम्हारी यह अंतिम भेंट है कान्ता। मैं चला...'

कह कर शास्त्री जी खड़े हो गये। कान्ता उसके निर्णय से काँप उठी थी। बोली, 'तो इस प्रकार मेरे ही परिवार के विनाश के लिये कटि-बद्ध हो गये हैं। यही न ?'

शास्त्री जी बोले, 'तुम्हारी अपेक्षा मैं तुम्हारा हित अधिक समझता हूँ कान्ता।'

बीच हो में काँता बोल उठी, 'आपने जो मेरा अहित किया है उसे मैं खूब समझती हूँ। मैंने अपने ही हाथों अपना और अपने परिवार का विनाश किया है। तुम इस परिबार के लिए सूर्य सिद्ध हुए हो।'

शास्त्री जी आश्चर्य के साथ उसके मुँह की ओर देखने लगे।

काँता स्फुट स्वर में कहने लगी, 'मैं एक सतीसाध्वी स्त्री हूँ। पति को छोड़कर कभी मैंने किसी को इस दृष्टि से नहीं देखा। तुम राजीव का कुछ न बिगाड़ सकोगे यह इस पतिव्रता का वरदान है। मैं तुमसे घृणा करती हूँ, तुम अभी यहाँ से चले जाओ!

शास्त्री अट्टहास कर उठा और 'अच्छी बात है, 'कहता हुआ कमरे के बाहर हो गया।

बीस

पद्धर्वन निस्संकोच भाव से राजा विद्यासागर की सभा के द्वार पर पहुँचगये।

द्वारपाल ने कुछ भयभीत होकर पूछा, आप' क्या चाहते हैं ?'

बड़ी निर्भीकता के साथ पदवर्द्धन ने कहा, 'तुम्हारे महाराज से भेंट करने आया हूँ।

द्वारपाल अन्दर गया और थोड़ी ही देर में बाहर आकर बोला, 'आप अन्दर आ सकते हैं।'

पदवर्द्धन अन्दर पहुँच गया। इस समय सभा में एक से एक बड़े योद्धा एकत्रित थे। अस्त्र-शस्त्रों की खनखनाहट से सभा गूँज रही थी। सामने रत्न जडित सिंहासन पर बहुमूल्य वेश-भूषा में शान के साथ विद्यासागर बैठा हुआ था।

पदवर्द्धन बिना किसी प्रकार का अभिवादन किये ही सामने जाकर खड़ा हो गया।

विद्यासागर की भवों पर बल पड़ गये किन्तु शान्त भाव से बोला, 'नवयुवक तुम कौन हो, तुम्हारा क्या नाम है ?'

पदवर्द्धन निर्भीक वाणी में बोला, 'मेरा नाम पदवर्द्धन है। मैं केशवर्द्धन का पुत्र हूँ।'

जरा भवों पर बल डालते हुए राजा ने कहा, 'कौन केशवर्द्धन ? मैं तो इस नाम के किसी व्यक्ति को नहीं जानता।'

गर्व से सिर हिलाते हुए पदवर्द्धन ने कहा, 'आप केशवर्द्धन को इतनी जल्दी भूल गये महाराज ? अभी थोड़े ही वर्ष तो हुए जब उनसे आपका युद्ध हुआ था। आप पराजित होकर एक मास तक उनके बंदी भी तो रह चुके हैं।'

राजा मन ही मन क्रोध से तिलमिला गया। बोला, 'अच्छा तो तुम उस केशवर्द्धन की बात कह रहे हो जिसे इस राजीव ने अभी हाल ही में मौत के घाट उतार दिया है। कहो, यहाँ कैसे आना हुआ ?

पदवर्द्धन ने कहा, मैं राजीव की ओर से सन्धि का प्रस्ताव लेकर आया हूँ। मैं उनका राजदूत हूँ।'

चेहरे पर आश्चर्य की मुद्रा खचित करते हुए राजा ने कहा, 'राजीव के दूत हो तुम ? जिस व्यक्ति ने तुम्हारे पिता की हत्या की है तुम उसके दूत बनकर आये हो ? यह तो बड़ी लज्जा की बात है। मैं तुम्हारे स्व० पिता का मित्र हूँ। तुम मेरे अपने हो। तुम मेरे राजकुमार होकर जो कुछ अवारा लोगों के दूत बनकर आये हो यह बात मुझे अधिक रुचिकर प्रतीत नहीं हुई।'

पदवर्द्धन बोला, 'तुम राजीव जैसे महान व्यक्ति को साधारण और अवारा व्यक्ति कहते हो ? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है। अब तक तो तुम्हें उनकी महानता और बल का काफी परिचय मिल चुका होगा ? तुम मुझे अपना कह रहे हो इसके लिये

आपको धन्यवाद। किन्तु मैं इसी नाते आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस पारस्परिक संघर्ष को समाप्त कर दें। वे बड़े महान और दयालु हैं। तुमने जो उनकी स्त्री को चुरा कर अक्षम्य अपराध किया उसके लिये वे आपको अवश्य ही क्षमा कर देंगे। फिर संघर्ष किस बात का ?'

कुछ रोष-सा प्रकट करते हुए राजा ने कहा, 'छोटे मुँह बड़ी बात करना तुम्हें शोभा नहीं देता पदवर्द्धन। तुम अभी मेरे बल को कदाचित नहीं जानते ? आज सारा संसार मेरे नाम से काँपता है। मैं राजीव, जैसे व्यक्तियों को जब चाहूँ मसल सकता हूँ। तुम भ्रम में हो।'

पदवर्द्धन मन ही मन मुस्करा कर बोला, 'यदि आप में इतना ही बल है तो आप उनकी स्त्री को चुरा कर कैसे ले आये। आपको तो उन्हे जीत कर ऐसा करना चाहिए था। आपका यह कार्य तो वीरों को शोभा नहीं देता।'

अपने क्रोध को मन ही मन में दबाते हुए राजा ने कहा, 'वे किस बल पर मुझसे लड़ना चाहते हैं। उनके पास योद्धा ही कौन है ? सुकंठ की अवस्था क्या लड़ने योग्य है ? रह गए तुम और हमारा भाई दयासागर। सो दयासागर कितना कायर और भीरु है वह मुझसे अधिक कोई नहीं जानता। हाँ, वह हरिदास एक है—'

कहता-कहता राजा चुप हो गया।

मन में प्रसन्न होते हुए पदवर्द्धन ने कहा, वह भी कोई योद्धा है ? वह तो मेरे चाचा कंठवर्द्धन का एक साधारण सा दास है। हमने सुना है कि उसने यहाँ आकर आपको बड़ा परेशान किया है। राजीव ने उसकी इस धृष्टता को पसन्द नहीं किया। फिर, इस सन्धि-प्रस्ताव के सम्बन्ध में—'

स्फुट-स्वर में राजा ने कहा, 'सन्धि की वार्ता कायर लोग किया करते हैं। राजीव और उनके सहायकों की मृत्यु निकट आ गई है।

तुम्हीं उस दल में भले आदमी हो। तुम उनका साथ छोड़ दो। मैं साधारण-सा प्रबन्ध करके ही तुमको तुम्हारे पिता का राज्य वापिस दिला दूँगा।'

अब पदवर्द्धन को रोष आ रहा था। वह बोला, 'मैं देखता हूँ कि आप इस विषय की गम्भीरता समझ नहीं रहे हैं। राजीव से वैर मोल लेकर आप सर्वनाश को आमंत्रित कर रहे हैं। आप मेरे पिता के मित्र हैं, अतएव मैं आपकी भलाई के निमित्त ही यहाँ आया हूं। ऐसा कौन है जो राजीव के आगे युद्ध में ठहर सके। मैं तुम्हारी भलाई चाहता हूँ राजा जी। यदि तुमसे इतने निकट का नाता न होता तो मैं आता भी नहीं।'

राजा ने कहा, 'वे अपनी स्त्री को छोड़कर चुपचाप अपने घर चले जायें। सारी सेना को विघटित कर दें तथा मेरे भाई को बंदी बना कर मुझे सौंप दें। बस इन्हीं शर्तों पर मैं सन्धि कर सकता हूँ।'

पदवर्द्धन का क्रोध चरम सीमा पर पहुँच रहा था। वे स्फुट-स्वर में बोले, 'मैं समझता हूँ कि दंभ और अहंकार ने तुम्हारी बुद्धि को नष्ट कर दिया है। आज तुम्हारी समझ में मेरी बात नहीं आती है किन्तु जब राजीव की सेना विभिषिका का प्रचार करती हुई आप पर टूटेगी तो आपको पता चलेगा कि मैं आपके हित की बात ही कहने आया था।

राजा ने क्रोध में पैर पटकते हुए कहा, 'तुम अपनी सीमा तक रहो पदवर्द्धन। मैं अधिक गुस्ताखी सहन नहीं कर सकता। तुम जिस हैसियत से आये हो उसी पर कायम रहो।'

पदवर्द्धन ने कहा, 'मुझे भयतीत करने की चेष्टा मत करो, राजा जी। मैं डरने वाला व्यक्ति नहीं हूं। तुम्हारी सभा में जितने योद्धा बैठे हुए हैं उन सबकी शक्ति का पता है मुझे। मैं उनके बल……'

राजा ने चिल्लाकर कहा, अपनी बकवास बन्द करो। तुम दूत की हैसियत से आये हो इसलिए मैं तुम्हें बार-बार क्षमा कर रहा हूं। नहीं

तो अब तक तुम्हारा शीश धड़ से अलग हो गया होता ।'

पदवर्द्धन ने पैर पटकते हुए कहा, 'दही के धोखे कहीं कपास मत खा जाना । राजा । मैं तुम्हारी सभा के सारे योद्धाओं को युद्ध के लिए ललकारता हूँ । जिसमें सामर्थ हो वह मेरी चुनौती स्वीकार कर सकता है ।'

किसी का साहस उठने का न हुआ । विद्यासागर ने सभी योद्धाओं की ओर देखा । सभी सिर नीचा किये बैठे हुए थे । परिस्थिति को दबाने की चेष्टा करते हुए विद्यासागर ने कहा, 'तुम सभा से इसी समय चले जाओ । मैं दूत के साथ असभ्य व्यवहार नहीं करना चाहता । अपने प्रभुओं से कह देना कि मैं युद्ध के लिए तैयार हूं । मैं सन्धि-प्रस्ताव को अस्वीकार करता हूं ।'

पदवर्द्धन अकड़ता हुआ सभा के बाहर चला गया ।

उसके चले जाने के पश्चात् विद्यासागर ने कहा, 'उस बंदी को मेरे सामने उपस्थित किया जाय ।'

सभा में निस्तब्धता छा गयी थी । थोड़ी देर ही में दो सैनिक एक बंदी को लेकर आ गये ।

विद्यासागर ने कहा, 'तुम पर राजद्रोह का अभियोग है भीखम । मैं तुम्हें दो मिनट का समय देता हूँ । तुम जो कुछ चाहो कह सकते हो ।'

भीखम ने सीना तानते हुए कहा, 'मैंने कोई अपराध नहीं किया है । अपराधी तो आपके अधिकारी हैं जिन्होंने प्रजा पर अत्याचार करके राज्य में एक हाहाकार उत्पन्न कर दिया है । मैं इस—'

चिल्लाकर राजा ने कहा, 'चुप रह अत्याचार के बच्चे ! मैं तुझे इसी समय मृत्यु-दंड देता हूं । सैनिको, इसको अभी मृत्यु के घाट उतार दो ।'

दो-तीन सैनिक नंगी तलवारें लेकर आगे बढ़े ।

राजा विद्यासागर ने कहा, 'पहिले इसकी जिह्वा काट कर फेंक दो।

सैनिकों ने भीखम को धरती पर पटक दिया तथा उसकी जिह्वा काट कर फेंक दी। भीखम छटपटाकर रह गया।

राजा की श्राज्ञा से भीखम को यंत्रणा देकर काटा जाना प्रारम्भ हुश्रा। उसके शरीर में तलवार से पचासों घाव कर दिये गये। उसके पश्चात् तप्त सलाखों से उसके शरीर से माँस के लीथड़े, श्रलग किये। भीखम के प्राण श्रभी न निकले थे। वह वीरतापूर्वक सहन कर रहा था। उसके दोनों हाथ काट कर फेंक दिये गये। श्रन्त में उसका सिर काटकर यह मृत्यु-दंड पूरा किया गया। थोड़ी देर पहले जहाँ भीखम खड़ा था वहाँ रक्त श्रौर मांस के लोथड़े दिखलाई पड़ रहे थे।'

प्रसन्न होकर राजा ने कहा, 'श्राज मेरा हृदय कुछ ठंडा हुश्रा। इसी व्यक्ति के कारण ही यह सारा फसाद खड़ा हुश्रा है। इन माँस के लोथड़ों को गिद्धों के सामने डाल दिया जाय।'

दो सैनिक माँस के लोथड़ों को बटोर कर ले गये।

श्रब राजा विद्यासागर ने इंद्रसैन को सम्बोधित करते हुए कहा, 'युद्ध का डंका बजाश्रो। यदि भवानी ने चाहा तो राजीव, निशानाथ, हरिदास, कंठवर्द्धन, पदवर्द्धन श्रौर सुकंठ श्रादि की भी यही दशा होगी। सेना तैयार है ?'

इन्द्रसेन ने सिर झुका कर कहा, 'जी हां।'

राजा विद्यासागर ने कहा, 'सेना का नेतृत्व रुद्रसागर करेगा। उसे जाकर मेरी श्राज्ञा सुनाश्रो।'

✻

इक्कीस

दो सौ शिक्षित सैनिकों को साथ लिये वागीश शास्त्री स्वर्णपुर की ओर बड़ी उमंग के साथ बढ़े चले जा रहे थे। राजीव का विनाश ही उसका उद्देश्य था।

कुछ सैनिकों ने घबड़ा कर विद्यासागर से जाकर कहा, 'महाराज' राजीव का आक्रमण हो गया है। उनकी सेना उमड़ी-घुमड़ी इसी ओर चली आ रही है।'

विद्यासागर ने तुरन्त इन्द्रसेन को बुला भेजा।

इन्द्रसेन ने कहा, 'महाराज, यह तो कुछ विचित्र-सी बात मालूम पड़ रही है। यह आक्रमण तो पूरब की ओर से हुआ है। राजीव की सेना तो पश्चिम की ओर है।'

विद्यासागर ने कहा, यह तो युद्ध और राजनीति है। उन्होंने दोनों ओर से आक्रमण की योजना बनाई होगी। खैर कोई बात नहीं, जाकर उनकी सेना को पीस दो। कोई जीवित बचकर न जाय।'

'जो आज्ञा,' कहकर इन्द्रसेन चला गया।

वागीश शास्त्री की सेना नगर के निकट आ गई थी। इन्द्रसेन ने जाकर उससे टक्कर ली।

वागीश शास्त्री ने मुस्कराते हुए कहा, 'तुम मुझे नहीं जानते इन्द्र! मैं तुम्हारा बड़ा भाई वागीश हूँ। पिता की सहायता के लिए आया हूँ।

इन्द्र आश्चर्य से उसके मुँह की ओर देखने लगा। 'मेरा भाई!' उसके मुँह से निकला।

मुस्कराकर वागीश ने कहा, 'हाँ तुम्हारा बड़ा भाई। तुम कदाचित् मुझे नहीं जानते। मैं पिताजी से भेंट करना चाहता हूँ।'

वागीश का आना सुनकर विद्यासागर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह दौड़ कर उस स्थान पर आ पहुँचा और प्रेम से वागीश को हृदय से लगा लिया।

वागीश बोला, 'आपकी आज्ञा से अपनी सेना लेकर आ गया हूँ। अब आप चिन्ता न करें पिताजी। मैं राजीव के लिये पर्याप्त हूँ। पहिले मुझे आक्रमण की आज्ञा दें।'

प्रसन्न होकर राजा विद्यासागर ने कहा, 'मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ वागीश। अब तुम्हीं युद्ध का संचालन करो। मैं निश्चिंत हुआ।

उसी दिन वागीश एक बहुत बड़ी सेना लेकर राजीव पर आक्रमण करने के लिए रवाना हो गया। राजा विद्यासागर ने उसे राजीव को जीवित पकड़ लाने की आज्ञा दी थी। वागीश ने हँसकर इस आज्ञा को शिरोधार्य किया।

इधर कंठवर्द्धन अपनी सेना लेकर पहिले ही राजधानी की ओर रवाना हो चुका था। राजधानी के निकट पहुंचते ही उसे विद्यासागर की सेना का तुमुल नाद सुनाई पड़ा। प्रसन्न होकर कंठवर्द्धन ने कहा, 'आज जीवन में प्रथम बार इस अन्यायी को फल चखाने का अवसर

मिल रहा है। आज उसे हम अच्छी शिक्षा देना चाहते है।'

पदवर्द्धन भी सेना के साथ था। बोला, 'आज तो मुझे ही युद्ध करने दीजिए चाचाजी। आप विश्राम करें।'

सेनापतित्व पदवर्द्धन ने ग्रहण किया। राजधानी की सीमा के अन्दर घुसकर सैनिकों ने उधम मचाना प्रारम्भ कर दिया। राज-भक्तों के घर लूटे जाने लगे। पीड़ित प्रजा हर्ष से जयजयकार करने लगी। सामने से वागीश की सेना आकर भिड़ गयी।

युद्ध प्रारम्भ हो गया था।

तलवारें चमक कर बजने लगीं। सैनिक जूझ-जूझ कर गिरने लगे। मौत का बाजार गरम हो गया। उस स्थान की जनता भी राजीव की सेना की सहायता करने लगी।

वागीश राजीव की तलाश में था। उन्हें न पाकर वह पदवर्द्धन के सामने आ पहुँचा।

पदवर्द्धन को देखकर वह मुस्करा कर बोला, 'कहां है तुम्हारा राजीव ? मैं उससे दो-दो हाथ करना चाहता हूँ।'

सगर्व मस्तक ऊँचा करके पदवर्द्धन ने कहा, 'मेरे रहते उन्हें यहां आने की आवश्यकता ही क्या है ? उनकी तलवार तो राजा का शीश काटने के लिए म्यान में सुरक्षित है। यदि साहस है तो आगे बढ़कर आजा।'

वागीश ने फौरन तलवार का वार किया। तलवार उचट कर पदवर्द्धन के कंधे पर लगी। रक्त की धार बह निकली।

पदवर्द्धन क्रोधित होकर वागीश पर झपटा। किन्तु तलवार का वार खाली गया।

अट्टहास करते हुए वागीश ने कहा, 'अभी बच्चे हो न ? जरा तलवार चलाना सीखो।'

पदवर्द्धन कुछ खिसिया-सा गया था। वह तलवार लेकर भिड़

गया। दोनों में युद्ध होने लगा। यद्यपि पदवर्द्धन तलवार चलाने में पटु था किन्तु वागीश के शरीर में दानवों का सा बल था। पदवर्द्धन शीघ्र ही थकने लगा।

अवसर पाकर वागीश पदवर्द्धन के शीश पर वार करने का दांव-पेंच करने लगा। पदवर्द्धन बहुत थक गया था। उसने साहस किया और वागीश के सिर को लक्ष्य करके तलवार चलाई।

किन्तु वागील कच्चा खिलाड़ी न था। वह झुककर आक्रमण बचा गया। वेग को सहन न कर सकने के कारण पदवर्द्धन भूमि पर गिर पड़ा। वागीश ने उसका सिर काटने के लिए तलवार तानी, किन्तु किसी दूसरे की तलवार से झनझना कर वह टूट गई।

सामने हरिदास खड़ा था।

वागीश के हाथ में अब तलवार न थी। हरिदास निहत्थे पर आक्रमण न करना चाहता था। उसने भी तलवार फेंक दी तथा मल्ल-युद्ध के लिए शास्त्री को ललकारा।

वागीश और हरिदास में मल्ल-युद्ध प्रारम्भ हो गया। उधर सेनाओं में तुमुल युद्ध जारी था। जमीन लाशों से पट चली थी। आहतों और मरने वालों में राजीव के सैनिक अधिक थे। वागीश के सैनिक अधिक शिक्षित और बलशाली थे।

यद्यपि वागीश ने मल्ल-युद्ध में बड़े कौशल का प्रदर्शन किया किन्तु हरिदास से वह पार न पा रहा था। घूंसों की मार से वागीश की नाक से रुधिर बहने लगा था। उसकी साँस फूलने लगी थी। हरिदास ने अवसर पाकर उसे गेंद की भाँति हाथों में उठा लिया तथा धरती पर दे मारा। वागीश उठने की चेष्टा कर ही रहा था कि पदवर्द्धन तलवार लेकर उस पर दौड़ पड़ा।

हाँफते हुए वागीश ने कहा, 'यदि युद्ध करना है तो मुझे तलवार दो। मेरी तलवार टूट चुकी है।'

पदवर्द्धन उसका सिर काटना ही चाहता था कि हरिदास ने उसे रोक दिया। वह बोला, 'निशस्त्र शत्रु के साथ युद्ध करना वीरों को शोभा नहीं देता। मैं इसे तलवार दे रहा हूँ।'

हरिदास ने वागीश को तलवार दे दी तथा खड़ा होकर पदवर्द्धन के साथ उसका युद्ध देखने लगा। दोनों वीरतापूर्वक लड़ रहे थे। वागीश किसी प्रकार पदवर्द्धन के सिर पर वार करना चाहता था। हरिदास ने सोचा कि पदवर्द्धन का पतन निश्चित है। उसने दौड़कर एक तलवार उठा ली तथा ललकार कर कहा, 'तेरी मृत्यु मेरे हाथों है। आ इधर लड़।'

वागीश वहाँ से हटना चाहता था किन्तु बीच ही में पदवर्द्धन का भरपूर हाथ उसकी गर्दन पर बैठा।

उसका शीश भूमि पर लोटने लगा।

वागीश शास्त्री के भूमि पर गिरते ही राजीव की सेना में जय-घोष होने लगा। पदवर्द्धन और हरिदास ढूंढ़-ढूंढ़ कर शत्रु सेना के विशिष्ट योद्धाओं को मारने लगे। किन्तु नेता के धराशायी होने के कारण सेना हौसले पस्त हो चले थे। थोड़ी ही देर पश्चात् शत्रु सेना भागने लगी। उसके भागते ही पदवर्द्धन की सेना ने नगर में लूट-मार प्रारम्भ कर दी। इस बात का ख्याल रखा गया कि जनता की किंचित-मात्र भी क्षति न होने पाये। जनता ने भी हार-फूलों से इस सेना का स्वागत किया। स्वर्णपुर के इतिहास में आज यह पहिला दिन था जब जनता को स्वतन्त्रतापूर्वक बोलने के लिए जुबान मिली थी। वे जानते थे कि राजधानी के इस भाग में राजा विद्यासागर के शासन का अन्त हो गया है।

आज के युद्ध में यद्यपि राजीव की सेना के बहुत से लोग हताहत हुये थे किन्तु फिर भी नगर के चौथाई भाग पर राजीव का अधिकार

हो गया था। यह कार्य इतनी सरलता से हो जायगा इसका किसी को स्वप्न में ध्यान न था। विद्यासागर की असंख्य सेना अभी लड़ने के लिये तैयार थी। यह अधिकार स्थायी होगा या नहीं इस पर कोई कुछ कह नहीं सकता था। रुद्रसागर, इन्द्रसेन और स्वयं राजा विद्यासागर साधारण योद्धा न थे। इनसे लोहा लेना जरा टेढ़ी खीर था।

जीते हुए भाग का शासन-प्रबन्ध दयासागर को सौंप कर सेना विश्राम करने लगी। सवेरे ही सेना के आगे बढ़ने का कार्य-क्रम बन गया था।

बाईस

इस पराजय और वागीश की मृत्यु से राजा विद्यासागर को बड़ा धक्का लगा। वह इस युद्ध को बड़ा साधारण युद्ध समझता था। वागीश की शक्ति को वह अजेय समझता था। किन्तु पदवर्द्धन जैसे साधारण योद्धा द्वारा उसके पराजित होने की बात से उसे दुःख भी हुआ और आश्चर्य भी।

उसी दिन रात्रि में उसने अपने मंत्रि-परिषद की बैठक बुलाई। इसमें केवल तीन व्यक्ति ही आमंत्रिय किये गये थे—रुद्रसागर, इन्द्रसेन तथा राज्य-मंत्री त्रिलोचन।

रुद्रसागर ने किंचित हतोत्साह होकर कहा, 'आपने यह व्यर्थ का झगड़ा मोल ले लिया दादा। कम से कम दयासागर को राज्य से निकाल देने वाली घटना बड़ी भयानक है। वह हमारा कौन सा भेद नहीं जानता।'

बीच ही में महारानी विशालाक्षी भी आ गईं।

उन्हें सम्बोधित करके रुद्रसागर ने कहा, 'क्यों भाभी, दयासागर का जाकर शत्रु से मिल जाना हमारे लिये अशुभ ही हुआ न ?'

महारानी विशालाक्षी बाल्यकाल ही से दयासागर से प्रेम करती थीं। उनका बाल्यकाल साथ ही साथ बीता था। दयासागर विशालाक्षी के रूप पर मुग्ध थे। परस्पर विवाह-सूत्र में बंधने के वादे भी हो चुके थे। किन्तु एक दिन विद्यासागर ने विशालाक्षी को देख लिया। उसका रूप और सौंदर्य देख कर वह स्तम्भित और स्तब्ध सा रह गया। उसने अपनी इच्छित वस्तु को छोड़ना कभी सीखा न था। झट उसने विवाह का प्रस्ताव उसके पिता के सामने रख दिया।

विशालाक्षी का पिता राज्य-सेना का एक प्रमुख अधिकारी था। विद्यासागर की बात टालने का साहस भला किसमें था। विद्यासागर और विशालाक्षी का विवाह हो गया। रह गया बेचारा दयासागर अपना टूटा हृदय लिये हुये।

किन्तु विशालाक्षी के भी हृदय में रह-रह कर यह काँटा खटक उठता था। किन्तु वह विवश थी।

दयासागर ने फिर विवाह नहीं किया और न वह कभी भाभी से मिलने ही आया। जब भेंट हो जाती तो दयासागर केवल मौन रह जाता था। विशालाक्षी उसके सम्मुख लज्जित रहती।

रुद्रसागर की बात सुन कर विशालाक्षी ने कहा, 'महाराज जो कुछ करते हैं। वह ठीक ही करते हैं। मैं भला इस विषय में क्या कह सकती हूँ।'

इन्द्रसेन ने अवसर पाकर कहा, 'वागीश दादा की पराजय ने सैनिकों को विचलित और हतोत्साह कर दिया है। अब महाराज की जैसी आज्ञा हो।'

राजा विद्यासागर अब तक चुप था। वह गम्भीर वाणी में कहने लगा, 'तुम लोगों की राय में अब क्या होना चाहिये ? मैंने इसीलिये

तुम लोगों को इस समय ग्रामंत्रित किया है।'

इन्द्रसेन बोल उठा, 'यदि संधि की कोई सूरत निकल सके तो—'

रुद्रसेन बोला, 'ग्रभी तो कुछ नहीं बिगड़ा है। मैं दयासागर को बुलाकर बात प्रारम्भ कर सकता हूं।'

महारानी बोल उठी, 'संधि कर लेना कुछ बुरा न होगा।'

एकाएक विद्यासागर चिल्ला उठा, 'निकल जाग्रो मेरे कक्ष से कायरो। तुम लोग मुझे उस साधारण से व्यक्ति राजीव से संधि करने की सलाह देते हो? मैं ग्रकेले ही उन दोनों भाइयों को पकड़ कर ला सकता हूँ। तुम लोग जा सकते हो। मैं कल ही सेना लेकर उन पर आक्रमण करूंगा।'

सब लोग भय से कांप उठे। साहस कर के महारानी ने कहा, 'किन्तु मंत्रणा—'

बीच ही में विद्यासागर स्फुट-स्वर में बोल उठा, 'तुम चुप रहो महारानी। विद्यासागर स्त्रियों की सलाह लेकर युद्ध-संचालन नहीं करता। स्त्रियों की सलाह लेकर चलने वाले व्यक्ति मझधार ही में डूब जाया करते है।'

महारानी चुप हो गईं। थोड़ी देर तक सन्नाटा सा छाया रहा। ग्रन्त में स्थिति को संभालने की चेष्टा करते हुये इन्द्रसेन ने कहा, 'यदि महाराज की ग्राज्ञा हो तो कल की सेना का सेनापतित्व मैं धारण करूँ?'

विद्यासागर चुप रहा।

ग्रवसर देख कर रुद्रसागर ने कहा, 'यह भार तो पहिले मुझे मिलना चाहिये। मैं इन्द्रसेन से बड़ा हूँ, यह ग्रधिकार तो मेरा है। मै राजीव का वध करूँगा ग्रन्यथा घर न लौटूँगा।'

राजा विद्यासागर ने धीरे से कहा, 'इस राज्य को सदा ही तुम

दोनों योद्धाओं पर गर्व रहा है। इन मामूली व्यक्तियों को दण्ड देने के लिये मैं समझता हूँ अकेला रुद्र ही काफी है।'

प्रसन्न होकर रुद्रसेन ने अभिवादन किया और बोला, 'अब आप निश्चित रहें दादा। कल मै सेना लेकर प्रलय मचा दूंगा। राजीव और निशानाथ दोनों के शीश काट कर सभा में उपस्थित कर दूँगा। आपका केवल आशीर्वाद चाहिये।'

राजा विद्यासागर बोला, 'कल पाँच हजार सेना लेकर तुम आक्रमण करो रुद्र। किन्तु एक बात और है—'

रुद्रसागर भाई के मुँह की ओर देखने लगा।

राजा ने कहा, 'राजीव के शीश के पहिले मुझे दयासागर का शीश चाहिये। मैं विद्रोही को कभी क्षमा नहीं कर सकता।'

सभी लोग कांप उठे, 'किन्तु संभल कर रुद्रसागर ने कहा, 'ऐसा ही होगा दादा।'

राजा कहने लगा, 'तुम कदाचित् नहीं समझते रुद्रसागर कि दया के जीवित रहते तुम उन लोगों पर कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकते।'

रुद्रसागर ने कहा, 'आप ठीक कह रहे हैं।'

मंत्रि-परिषद की बैठक समाप्त हुई। राजा उठ कर शयन कक्ष में चला गया।

अब मंत्रि-परिषद की दूसरी बैठक इन्द्रसेन, के कक्ष में हो रही थी। उपस्थित थे इन्द्रसेन, रुद्रसागर और महारानी विशालाक्षी।

रुद्रसागर ने धीरे से कहा, 'मैं भाई की हत्या कैसे करूँगा ? इससे अच्छा तो यह है कि मैं स्वयं युद्ध में अपने प्राण दे दूँ। किसी को लौट कर मुंह न दिखाऊँ ?'

महारानी के नेत्र सजल थे। वे बोली, 'न जाने इस राज्य पर अब कौन-कौन से संकट आने वाले हैं। हे प्रभो !'

और वे चुप हो गईं !

रुद्रसागर भाभी की पीड़ा समझते थे। बोले, 'आप क्यों चिंतित हैं भाभी ? मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं दया को किसी भी प्रकार की क्षति न पहुँचने दूँगा।'

महारानी शान्त थी।

रुद्रसेन ने धीरे से कहा, 'मुझे तो लक्षण अच्छे नहीं दिखलाई पड़ते। जिन लोगों ने बात ही बात में वागीश दादा को मार गिराया उन्हें साधारण व्यक्ति समझ लेना ही एक बड़ी भारी भूल है।'

महारानी बोल उठीं, 'मैं इन्द्र की ओर से ही बड़ी चिंतित रहती हूँ। अभी इसकी आयु ही क्या है, अधिक से अधिक बीस वर्ष। इसे युद्ध में भेजते मेरा तो हृदय कांपता है। सुना है वागीश तो इन्हीं का पुत्र था ?'

सिर हिलाते हुये रुद्र ने कहा. यह भी एक मनोरंजक कथा है भाभी। उस समय तो तुम्हारा विवाह भी न हुआ था। बड़ी महारानी प्रभा ने मूल-नक्षत्र में एक बालक को जन्म दिया। दादा को तो तुम जानती हो कितना कड़ा हृदय रखते हैं। उन्होंने उसे जन्म लेते ही नदी में बहा दिया।'

महारानी सिहिर कर बोलीं, 'कितनी क्रूर घटना है यह !'

रुद्र ने कहा, 'इस शोक में भाभी का देहावसान हो गया। किन्तु विधि की विडम्बना तो देखिये, उस बालक ने बड़े होकर उसी निर्मोही पिता ही के लिये अपने प्राण दे दिये।'

इन्द्रसेन ने कहा, किन्तु वागीश दादा के मारे जाने का पिताजी को शोक भी बहुत अधिक हुआ है।'

थोड़ी देर तक सब लोग चुप रहे। फिर महारानी ने कहा, 'महाराज पर संकट आया जान कर हम लोग वास्तव में चिंतित हैं, किन्तु यह झगड़ा तो उनकी स्त्री चुरा कर व्यर्थ में मोल लिया गया है। इस आयु में महाराज को यह बात शोभा नहीं देती।'

इन्द्रसेन ने कहा, 'इसके अतिरिक्त वे हम लोगों को मंत्रणा के लिये तो बुलाते हैं किन्तु किसी की बात सुनना और मानना नहीं चाहते।'

रुद्रसागर बोल उठा, 'इस वृद्धावस्था में अब उनकी बुद्धि खराब हो गई है। अब तो उन्हें राज-काज का भार इन्द्र को देकर विश्राम करना चाहिये।'

महारानी ने कहा, 'किन्तु वे सिंहासन छोड़ना ही कब चाहते हैं।'

रुद्र बोल उठा, किन्तु हम लोग उनको इस बात के लिए विवश कर सकते हैं। उनके विरुद्ध विद्रोह कर सकते हैं।'

दोनों कानों पर हाथ रखते हुये महारानी ने कहा. 'न-न-न, उनके विरुद्ध विद्रोह की बात करना भी मैं पाप समझती हूं।'

कुछ खिसियाकर रुद्रसागर ने कहा, 'यह विद्रोह नहीं है भाभी। आखिर उन्हें भी तो हमारी बात मानना चाहिये। क्या उन्हें दया के लिये ऐसी बात कहना चाहिये थी।'

महारानी ने कहा, 'इस बात को अब समाप्त कर देना चाहिये। मेरे लिये वे सर्वस्व हैं—दया मेरे लिये कोई नहीं।'

रुद्र ने देखा कि महारानी के नेत्रों से अश्रु ढुलक पर बहने लगे।

इंद्रसेन कुछ थका हुआ सा था। उठ कर अपने शयन-कक्ष की ओर चल दिया।

उसकी पत्नी सुनयना उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। पति को देखते ही बोल पड़ी, 'आज इतनी देर?'

इंद्रसेन गम्भीर वाणी में बोला, संकट काल में किसी भी प्रकार की मर्यादा सुरक्षित नहीं रह जाती। आज इस घर में संकट उपस्थित है न?'

भोले भाव से भौंहों को नचाते हुये सुनयना ने कहा. 'संकट? कैसा संकट? क्या आप पर भी कभी संकट आ सकता है?'

प्यार से उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुये इंद्रसेन ने कहा, 'हां,

सुनयना, इस समय हम संकट में ही पड़े हुये हैं। पिताजी ने दूसरे की स्त्री चुरा कर जो जघन्य पाप किया है उसका फल तो मिलेगा ही। हो सकता है कि हम लोग धन-वैभव, राज्य और सभी कुछ गवां बैठें।'

सलोने मुखड़े पर आश्चर्य की मुद्रा लाती हुई सुनयना बोली, 'दूसरे की स्त्री ? नहीं वे किसी मलिन भावना से ऐसा नहीं कर सकते। वे धुरंधर विद्वान हैं. पटु राजनीतिज्ञ हैं, वीर पुरुष हैं। वे ऐसा जघन्य पाप भला क्यों करेंगे ?'

इन्द्रसेन बोल उठा, 'ऐसा मालूम पड़ता है कि उनकी बुद्धि मलिन पड़ गई है। अब उसी जघन्य पाप की चिता में सारा परिवार स्वाहा होना चाहता है। मैं तो बहुत घबड़ा रहा हूँ सुनयने। पिताजी किसी की सुनने को तैयार भी नहीं हैं।'

सुनयना बोल उठी, 'तो इसमें आपके घबड़ाने की क्या बात है ? आपको तो केवल पिताजी की आज्ञा का पालन करना चाहिये।

इंद्रसेन बोल उठा, 'किन्तु पिताजी ने गलत मार्ग अपनाया है। फिर—'

सुनयना बोल उठी, 'आप इसका निर्णय करने वाले कौन हैं कि पिताजी का मार्ग गलत है या सही। आप अपनी मर्यादा तक रहें।'

इन्द्रसेन एकटक पत्नी के चेहरे की ओर देखने लगा। सुनयना कहती गई, 'आपको कर्तव्य करते रहना है। किन्तु कर्तव्य की परिभाषा तो शाश्वत है न ? फिर····फिर कर्तव्य ही तो मर्यादा की सीमा निर्धारित करता है। कर्तव्य की परिभाषा बदलते ही आपकी मर्यादा नष्ट हो जायगी, आप नष्ट हो जायेंगे।'

इन्द्रसेन चुप रहा।

सुनयना कहने लगी, 'आज राजधानी में जो कुछ हो रहा है वह मुझसे छिपा नहीं है। इसका फल जो कुछ भी निकले किन्तु यह सत्य है कि कर्तव्य से च्युत होते ही हमारा पतन हो जायगा। आज इस घर में

जो विद्रोह की एक लहर उठ रही है वही तो विनाश की सूचना है। इसमें पिताजी का क्या दोष है ?'

आश्चर्य से पत्नी की ओर देखता हुआ इन्द्रसेन बोला, 'पिताजी का नहीं तो क्या दोष हम लोगों का है ?'

सुनयना बोल उठी, 'निश्चित रूप से यह दोष आप लोगों का ही है मैं पूछती हूँ कि इस घर को, इस राज्य को किसने बनाया ? किसी घर या राज्य के निर्माण में किन्हीं सिद्धान्तों, किन्हीं लक्ष्यों और किन्हीं मान्यताओं का आश्रय लेना पड़ता है। तब, जब पिताजी ने ही इसका निर्माण किया है तो आज हम उन्हें शिक्षा देने की चेष्टा क्यों करें ? उनके मार्ग में अवरोध क्यों प्रस्तुत करें।'

इन्द्रसेन ने कहा, 'क्या हम अवरोध प्रस्तुत कर रहे हैं ? माताजी—'

बीच ही में सुनयना बोल उठी, 'क्षमा कीजियेगा, इस संबंध में सारा दोष माताजी का ही है। इस घर में विद्रोह की चर्चा उन्होंने प्रारम्भ की है। ठीक कह रही हूँ न ?'

इन्द्रसेन कुछ निरुत्तर सा था।

प्रेम से उसकी बाँह पर हाथ फेरते हुये सुनयना ने कहा, 'आप जो आज्ञा दें मेरे लिये शिरोधार्य है। आप उचित करें या अनुचित मेरे लिये वह सब उचित ही होगा। यही बात या मार्ग तो माताजी को भी तो अपनाना चाहिये।

इन्द्रसेन को निद्रा आने लगी थी।

*

तेईस

इधर महारानी को अपने कक्ष में देख कर राजा विद्यासागर ने हंस कर उनका स्वागत किया।

महारानी विशालाक्षी की अवस्था चालीस वर्ष पार कर चुकी थी किन्तु अब भी वे गजब की सुन्दरी थीं। उन्हें नवयुवतियों की श्रेणी में देखकर कोई उनकी अवस्था का अनुमान कठिनता से लगा सकता था।

इस समय राजा को प्रसन्न मुद्रा में देख कर महारानी ने कहा, 'आज अधिक श्रम पड़ा है महाराज पर। अब आप विश्राम करें।'

मुस्कराकर राजा ने कहा, 'मैं श्रम से कभी थकता नहीं विशाल। मैं जब दूसरों की कायरता लक्ष्य करता हूँ तो स्वयं मानसिक दुर्बलता का शिकार होने लगता हूँ।'

कहते-कहते विद्यासागर गंभीर हो गये।

महारानी ने कहा, 'आप सारा उत्तरदायित्व भी तो स्वयं वहन करते रहते हैं। भाई और पुत्र पर भी तो—'

विद्यासागर धीरे-धीरे कहने लगे, 'सुनो रानी, मैंने इस साम्राज्य का निर्माण किया है। एक प्रतिष्ठा कायम की है। इस शालीनता की रक्षा भी तो करना है। कोई इस दर्द को क्या समझ सकेगा।'

महारानी ने कहा, 'किन्तु राजीव जैसे साधारण व्यक्ति से झगड़ा बढ़ाना....'

बात काट कर विद्यासागर ने कहा, 'मैं राजीव को साधारण व्यक्ति नहीं मानता। मैं मूर्ख नहीं हूँ रानी। सब कुछ समझ बूझ कर ही मैंने यह संघर्ष छेड़ा है। राजीव प्रजा-तंत्र का पोषक है और मैं राज़-तंत्र का। यह मेरी और राजीव की नहीं प्रजा-तंत्र और गण-तंत्र की लड़ाई हैं। संसार करवट बदल रहा है। मेरे विचार से प्रजा-तंत्रवाद सफल शासन का प्रतीक नहीं है। इससे राज्य में भ्रष्टाचार ही फैलता है। जनता मूर्ख है, वह अपने प्रतिनिधि भी चुनना नहीं जानती। उसे यह अधिकार दे देने से शासन सदैव अनुपयुक्त एवं निर्बल व्यक्तियों के हाथ में चला जाता है। शासकों का साहस जनता को अप्रसन्न करने का नहीं हो सकता। शासन-सिद्धान्तों में भी समय-समय पर परिवर्तन होने के कारण राज्य-सुदृढ़ नींव पर खड़ा नहीं हो पाता। भय बिना न प्रीति हो सकती है और न शासन!'

महारानी स्तब्ध सी होकर सुन रही थीं।

विद्यासागर कहते गये, 'इसके विपरीत राज-तंत्र में शासन शक्ति पर टिका होता है। एक व्यक्ति का निर्णय यदि सही हुआ तो राज्य उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच जायगा। शासक और दृढ़ता पर्याय-वाची शब्द हैं। बिना कठोरता के शासन चल नहीं सकता। उत्तम शासन का अर्थ है राज्य की समृद्धि।'

महारानीं बोल उठी, 'तो क्या प्रजा-तन्त्र में देश की उन्नति संभव नहीं है?'

राजा ने कहा, 'यह कैसे कहा जा सकता है ? किन्तु एक तंत्र शासन में रह कर देश जल्दी और अधिक उन्नति कर सकता है। इसके अतिरिक्त शासक का कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं होता। उसका जीवन अभिशापित सा रहता है। जीवन भर राज्य की उन्नति के लिये अपना सब कुछ न्योछावर करने पर भी जनता उसकी एक साधारण सी भूल को भी क्षमा नहीं करना जानती। उसके सारे जीवन की तपस्या काँच की सुराही की भाँति एक साधारण धक्के से चूर-चूर हो जाती है। मैं प्रजा-तंत्रवाद से घृणा करता हूँ।'

महारानी बोलीं, 'किन्तु एकतंत्रवाद तो प्रजा-पीड़न के लिये बदनाम है। मैं तो समझती हूँ—'

बीच ही में राजा बोल उठे, 'और प्रजा तंत्रवाद में जनता शासक के जीवन को अभिशाप बना देती है। मैं राजा हूँ, मेरे लिये तो एकतंत्र शासन ही लक्ष्य हैं। प्रजा की मैं चिन्ता नहीं करता। अपनी शक्ति से मैं कभी सिर उठाने का अवसर न दूँगा। जो सिर उठायेगा वह कुचल दिया जायगा।'

महारानी ने कहा, 'ऐसा कठोर शासन अपने पारिवारिक जीवन में भी कठोर और अप्रिय ही रहता है।'

हँसते हुये राजा ने कहा, 'किन्हीं अंशों तक तुम्हारा कहना ठीक है विशाल। इस प्रकार के शासक का स्वभाव कुछ कठोर हो ही जाता है। मैं प्रत्येक बात में अपना ही स्वर ऊँचा रखने का आदी हो गया हूँ। इससे मुझे लाभ ही होता है। नियंत्रण के लिये मुझे प्रयास नहीं करना पड़ता। किन्तु···मैं कभी-कभी तुम्हारे प्रति भी कठोर हो उठता हूं। इसके लिये मुझे पश्चाताप भी होता है।'

महारानी विशालाक्षी कुछ गद्गद होकर बोलीं, 'किन्तु आपका पुनीता को चुरा कर ले आने का काम क्या अच्छा हुआ ?'

यदि किसी और समय विद्यासागर से कोई यह प्रश्न करता तो

उसकी कुशल न थी, किन्तु इस समय वह दूसरी ही धारा में बह रहा था। बोला, 'इस प्रकार के कार्य को अच्छा कौन कह सकता है, किन्तु ऐसा करने का कुछ कारण भी है। राजीव ने यहाँ आते ही प्रजा के साथ सहयोग करना प्रारम्भ कर दिया। इसका जो भी परिणाम हुआ उसे तुम देख ही चुकी है। एक दिन भर इस नगर में प्रजा का ही आतंक छाया रहा। यदि उस दिन हम प्रजा से लड़ते तो निश्चित रूप से हमारी पराजय हो जाती। उस दिन ही मैंने समझ लिया कि राजीव को पराजित करना जरा टेढ़ी खीर है। फिर भी अपना आतंक बनाये रखने के लिये मैंने सदा उन्हें नगण्य ही घोषित किया। मगर बात ऐसी नहीं है। वे संसार में इस समय प्रजातंत्रवाद के सबसे बड़े हामी हैं। वे प्रजा को साथ में लेकर चलने में दक्ष हैं। स्वयं हमारी राजधानी की प्रजा उनके साथ है। यदि मैं उनका वध नहीं करता हूँ तो मेरा कहीं पता न चलेगा। तुम तो सन्धि की बात करते हो? वे मुझसे सन्धि करेंगे ही क्यों? मेरा उनका झगड़ा ही क्या? उन्होंने अकारण मेरे शासन-सम्बन्धी मामलों में क्यों हस्तक्षेप किया।'

महारानी ने पूछा, 'ऐसा क्यों किया उन्होंने?'

मुस्करा कर राजा ने कहा, 'उनका उद्देश्य ही प्रजातंत्रवाद कायम करना है। वे राजाओं द्वारा प्रजा-पीड़न के विरुद्ध हैं। उन्होंने इस सिद्धान्त के लिए अपना जीवन अर्पित किया है। पुनीता को तो मैं इसलिए चुरा लाया, जिसमें वे मुझसे सन्धि करलें। यदि वे मेरी राजधानी छोड़ कर चले जाने का वचन दें तो मैं पुनीता को सादर उनके पास पहुंचाने के लिए तैयार हूँ।'

महारानी कुछ ऊब कर बोली, 'तब फिर होगा क्या?'

राजा ने गम्भीर होकर कहना प्रारम्भ किया, 'युद्ध होगा। मैं एकतन्त्रवाद का और राजीव प्रजातन्त्रवाद के समर्थक हैं। हम में से एक ही जीवित रहेगा। यह युद्ध इतना भयंकर होगा कि लोग युग-युग

तक याद करेंगे। मुझे जय-पराजय की कोई चिन्ता नहीं है। यदि विजय मिली एकतन्त्रवाद का झंडा लहरायेगा और यदि पराजय हुई तो आनन्द से धरती पर सदा के लिए सो जाऊंगा। मुझे किसी भी प्रकार का कष्ट न होगा। मैं राजा हूँ और जीवन-भर राजसी सुख भोगने के पश्चात् राजा की ही मौत मरूंगा, किन्तु—

महारानी ने कहा, 'किन्तु' क्या ?

राजा ने गर्व से छाती फुला कर कहा, 'राजीव को यह विजय बहुत महंगी पड़ेगी। प्रजातन्त्रवाद में स्वयं उनका जीवन सुखी न रहेगा। उन्हें आगे चलकर न जाने कितना त्याग और करना पड़ेगा। लोग उनकी प्रशंसा भी करेंगे और निन्दा भी। वे सुखी न रह सकेंगे। जनता को सन्तुष्ट करना असम्भव है।'

'महारानी ने कहा, तो किसी प्रकार भी यह युद्ध टल नहीं सकता ?'

सिर हिलाते हुए विद्यासागर ने कहा, 'नहीं, यह निर्णयात्मक युद्ध होकर ही रहेगा। मैंने उन्हें बता दिया विशाल, कि, यह व्यक्तियों का संघर्ष नहीं है। सिद्धान्तों का युद्ध है। मैंने तुम्हें वह वास्तविकता बता दी है जिसे आजकल के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ भी नहीं समझते। राजतंत्र-वाद का युग आदि काल से चला आ रहा है, किन्तु प्रजातन्त्रवाद के युग का अभी प्रारम्भ ही हुआ है। ऐसा विश्वास करना पड़ेगा कि कदाचित् राजीव ही इस सिद्धान्त का प्रयोग करने वालों में प्रथम व्यक्ति हैं। तभी तो मैं उनसे डरता हूँ।'

महारानी बोलीं, 'कोई बीच का मार्ग……'

विद्यासागर बोल उठा, 'नहीं, कोई बीच का मार्ग नहीं। बिना युद्ध के इन सिद्धान्तों की लड़ाई का अन्त नहीं हो सकता। मैं या राजीव दोनों में से एक की विजय होगी, एक ही जीवित रहेगा।'

महारानी ने अवसर पाकर कहा, 'तो फिर आपने दयासागर को इतना कठिन दंड देने की घोषणा क्यों की है ? क्या यह…'

अब विद्यासागर के चेहरे पर कुछ रोष के चिह्न आ गये थे। वे बोले, 'मैं राजीव को क्षमा कर सकता हूँ, किन्तु दयासागर को नहीं। यह तो विश्वासघात है विशाल, इसका दंड केवल मृत्यु ही है।'

महारानी पति के मुँह की ओर देखती रहीं।

राजा कहने लगे, 'वह मेरा छोटा भाई है। मैं उससे इतना ही स्नेह करता हूं जितना एक बड़ा भाई छोटे भाई से कर सकता है। किन्तु यह राजनीति है। राजनीति में कोई किसी का नहीं। निर्दयता, स्वार्थ, झूठ और विश्वासघात का नाम है राजनीति। राजनीति के पुजारी का कोई धर्म नहीं होता। स्वार्थ ही उसका कर्तव्य है। वह सबका है और किसी का नहीं। प्रायः शासक अपने प्रिय से प्रिय को पहिले फाँसी पर चढ़ाते हैं फिर उसके शव पर फूट-फूट कर रोते हैं। फाँसी पर चढ़ाना राजनीति है और शव पर फूट-फूट कर रोना स्वाभाविक अपनत्व, की बात है। राजनीति में पड़ कर वह अपनत्व, ममत्व तथा मनुषत्व सभी को त्याग देता है।'

महारानी ने एक बार फिर प्रयास किया। बोलीं, 'तो क्या दयासागर को फिर क्षमा नहीं मिल सकती।'

गम्भीर वाणी में राजा ने कहा, 'दयासागर को क्षमा करना मेरी मृत्यु को निमंत्रण देना है। तुम इन बातों को नहीं समझती। अब कुछ नहीं हो सकता। अब युद्ध होगा और ऐसा भयानक युद्ध होगा कि सब कुछ स्वाहा हो जायगा। यह युद्ध केवल मेरी या राजीव की मृत्यु से रुक सकता है।'

विशालाक्षी पूछ बैठी, 'किन्तु क्या यह निश्चित नहीं है कि इस युद्ध में विजय आपकी ही होगी? शक्ति तो आपके ही पास है।'

राजा विद्यासागर एक निश्वास लेकर कहने लगे, 'यही न तुम भूल रही हो महारानी। यह सच है कि मेरी शक्ति के आगे उनकी शक्ति नगण्य है, किन्तु युग की सहानुभूति, युग की प्रेरणा तथा युग का प्रवाह उनके साथ है। उनके स्वार्थ सार्वजनिक हैं और मेरे हैं वैयक्तिक।

उनकी सेना का प्रत्येक सैनिक युद्ध को अपनी व्यक्तिगत उन्नति का साधन मानता है, किन्तु मेरे सैनिक मुझे प्रसन्न करने और अपने वेतन के लिए लड़ते हैं। तब फिर तुम्हीं कहो कि विजय किस की होगी ?'

विशालाक्षी कुछ व्याकुलता-सी प्रकट करती हुई बोली, 'तब तो भयानक परिस्थिति है।'

कुछ मुस्करा कर राजा विद्यासागर ने कहा, 'किन्तु मैं भी मोम का बना हुआ नहीं हूँ विशाल। मुझे पराजित करना साधारण काम नहीं हूँ। अभी तो युद्ध होगा, परिणाम की चिन्ता ही क्या है ?'

महारानी चुप हो गईं।

विद्यासागर भी चिन्ता में निमग्न हो गये।

*

चौबीस

राजीव को लोग जितना ही समझने की चेष्टा करते थे उतने ही आश्चर्य में पड़ जाते थे। युद्ध की विभीषिका का उन पर को प्रभाव न था। उन्होंने घोषणा कर रखी थी कि यह युद्ध किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं लड़ा जा रहा है। कराहती प्रजा औ विगलित मानवता के लिए उद्धार के लिए यह युद्ध परमावश्यक है सत्य और न्याय की सदा से जय होती आई है। अन्याय और अत्याचा का निश्चित रूप से अन्त होता है।

इन्हीं सिद्धान्तों और भावनाओं को लेकर सेना का संगठन हुअ था। प्रत्येक सैनिक में मर-मिटने का उत्साह था। दिन पर दिन लो सेना में सम्मिलित होते चले जा रहे थे। वे राजधानी पर आक्रमर करके उसे तहस-नहस कर डालने की उमंग में थे।

एक दिन उन्होंने चुपचाप हरिदास को बुला कर कहा, 'तुम मे सबसे विश्वस्त सखा हो हरिदास। तुम्हारे ही बल पर शत्रु की पराज होगी। मुझे तुमसे कुछ कहना है।'

हाथ जोड़ कर हरिदास ने कहा, 'मैं आपका सखा नहीं आपक

दासानुदास हूँ। मेरा सौभाग्य है कि आप मुझे इतना विश्वसनीय समझते हैं। क्या फिर पुनीता जी का कुशल-क्षेम लेने के लिए चला जाऊँ ?'

विहंस कर राजीव ने कहा, 'नहीं, अब इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं चाहता हूँ कि लोग यह न समझ लें कि इतना बड़ा रक्त-पात केवल पुनीता के उद्धार के लिए होने जा रहा है। वास्तव में इस युद्ध का उद्देश्य तो प्रजा को दासता से मुक्त करना है। यदि दानवता के प्रतीक इस राजा का अन्त न हुआ तो सारे संसार में एकछत्र शासन से त्राहि-त्राहि मच जायगी। मैं रक्तपात नहीं चाहता, किन्तु यह दुष्ट राजा किसी प्रकार भी झुकने को तैयार नहीं है। उसने अपने को भगवान से भी अधिक शक्तिशाली समझ रक्खा है।'

हरिदास बोल उठे, 'तो उसका वध आपके हाथों द्वारा निश्चित है। उसे अपनी करनी का फल मिलेगा। देर है किन्तु अंधेर नहीं है। तो फिर मेरे लिये क्या आज्ञा होती है ?

कुछ सोच कर राजीव ने कहा, 'मैं चाहता हूँ कि इस युद्ध में इस दुष्ट राजा की पराजय अवश्य हो किन्तु सर्वनाश की चंडिका जन साधारण की सम्पत्ति पर अट्टहास न कर सके। सैनिकों को समझा दिया जाय कि जनता को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। किसी का घर न लूटा जाय और न बरबाद किया जाय। राज-भक्तों को पकड़ लिया जाय किन्तु उनके परिवार वालों से किसी भी प्रकार की छेड़खानी न की जाय। तुमसे इस समय बात करने का मेरा यही उद्देश्य है।'

हरिदास बोला, 'जो आप चाहते हैं वही होगा। हमारी सेना केवल राजा की सेना से लड़ेगी। पिछली लड़ाई में भी ऐसा ही हुआ। स्वयं जनता ने हमारी सेना का स्वागत किया। हम अपनी सेना को ऐसी ही शिक्षा देंगे कि वह सार्वजनिक सम्पत्ति को किसी भी प्रकार की हानि न पहुंचाये।'

प्रसन्न होकर राजीव ने कहा, 'यदि युद्ध हो तो वह धर्म-युद्ध होना चाहिए। निर्दोष, भागते हुये और निरस्त्र शत्रु को मारना भी घोर

पाप है। शस्त्र लेकर सामने आये हुये शत्रु से लड़ना या उसका वध करना कदापि धर्म-विरुद्ध नहीं है। मैं अन्याय से प्राप्त विजय को पराजय से भी बुरा समझता हूँ।'

हरिदास ने कहा, 'आप युग-पुरुष हैं। आप शाँति तथा युद्ध दोनों की ही मर्यादा के पोषक हैं। आप ही के कारण इस युद्ध में हमारी विजय होगी।'

इस बीच कंठवर्द्धन, सुकंठ, निशानाथ और पदवर्द्धन आदि भी आ गये थे।

निशानाथ ने कहा, 'हम कल सवेरे ही आक्रमण करेंगे। कल सेना का नेतृत्व स्वयं मैं करना चाहता हूँ।'

कुछ सोचकर राजीव ने कहा, 'कल राजधानी पर दो ओर से आक्रमण होना चाहिये। पूर्व की ओर से तुम सेना लेकर आक्रमण करो निशानाथ और पश्चिम की ओर से मैं। कल संध्या तक इस प्रकार लड़कर हम अपनी शक्ति का अनुमान लगा सकेंगे। मैं युद्ध की समाप्ति जल्दी ही चाहता हूँ।'

दयासागर ने कहा, 'मैं भी····'

बीच ही में मुस्करा कर राजीव ने कहा, तुम राजा हो दयासागर। युद्ध तो सेनायें करती हैं। तुम्हारे युद्ध करने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। दूसरी बात यह हैं कि तुम हम लोगों की शरण आये हो अतएव तुम्हारी रक्षा का उत्तरदायित्व भी हम लोगों पर है। तुम्हें इसी स्थान पर सुरक्षित रहना होगा।'

दयासागर ने कहा, 'मैं कायर नहीं हूँ बंधुवर। इतना बड़ा युद्ध हो और मैं मौन बैठा रहूँ यह न सम्भव ही है और न शोभनीय।'

राजीव ने कहा, 'तुम्हें कायर कौन कह सकता है दयासागर। मेरा और विद्यासागर का जब युद्ध होगा तो तुम्हें भी लड़ने का अवसर दिया जायगा। तुम्हारी ही सहायता से तो मैं विजय प्राप्त करूँगा।

मैं क्या विद्यासागर को अकेले हरा सकूंगा ?'

हाथ जोड़कर दयासागर ने कहा, 'यह आपकी महानता और श्रेष्टता है जो ऐसा कह रहे हैं। मैं तो एक तुच्छ जीव हूँ।'

राजीव ने कहा, 'किन्तु वह अन्त में तो तुम्हारा भाई है—'

बीच ही में दयासागर बोल उठा, 'वह भाई नहीं सदा से मेरा शत्रु रहा है। उसने मेरा सारा जीवन विशृंखलित कर दिया है। मेरा सर्वस्व अपहरण कर लिया है।'

दयासागर ने अपने और विशालाक्षी के प्रेम की सारी कथा सुना दी।

राजीव की भवों पर बल पड़ गये। वे बोले, 'यह राजा अवश्य ही वध के योग्य है। तुमसे विशालाक्षी को छीनकर जघन्य अपराध किया है। तुम धैर्य रक्खो। जिस प्रकार केशवर्द्धन का वध करके मैंने नक्षत्रा का उद्धार किया है उसी प्रकार विद्यासागर का वध करके विशालाक्षी को तुम्हें सौंप दूंगा।'

दयासागर ने सजल नेत्रों से राजीव की ओर देखा। राजीव ने उसके नेत्रों में सारी प्रेम-कथा पढ़ ली।

हरिदास वे कहा, 'यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आज ही रात्रि में विशालाक्षी को राजमहल से उठा लाऊँ ?'

मुस्कराकर राजीव ने कहा, 'नहीं, इसकी आवश्यकता न पड़ेगी। विशालाक्षी रानी है। विद्यासागर के वध के पश्चात् भी वह रानी बनी रहेगी।'

थोड़ी देर बाद दयासागर लौट कर अपने कक्ष में आ गये। आज एकाएक वर्षों बाद उनका वह सप्त प्रेम जाग उठा था। वे प्रेम-चिन्तन सागर में गोते खाने लगे।

बहुत देर बाद उन्हें नींद आई।

आज वे रात्रि-भर विशालाक्षी को ही स्वप्न में देखते रहे।

दयासागर ने देखा कि विशालाक्षी उनके सिरहाने आकर खड़ी हो गई।

मलिन वेश, मलिन वस्त्र—क्षीण काय।

दयासागर ने देखा—

विशालाक्षी ने आँचल से आँसू पोंछ लिये।

दयासागर देखता रहा—

विशालाक्षी के क्षीण शरीर के पीछे वृहदाकार पुरुष मूर्ति खड़ी अट्टहास कर रही है। उसकी दाहिनी भुजा विशालाक्षी के कंधे पर जाकर टिक गई।

वह विद्यासागर था।

दयासागर को शीघ्र ही परिस्थिति का ज्ञान हुआ। वह भय से काँप उठा। कहाँ है राजीव ?

उसके मुँह से एक चीख निकलने वाली थी, किन्तु भयातिरेक में वह दाँतों के भीतर फसकर रह गई।

विद्यासागर चित्र से गायब हो चुका था। रह गई विशालाक्षी।

उसने डूबती हुई-सी आवाज में कहा, 'पहिचाना ?'

दयासागर प्रयास करके भी बोल न पा रहा था।

विशालाक्षी दोनों हाथ फैलाये आगे बढ़ी।

दयासागर विचलित-सा हो उठा।

विशालाक्षी कुछ आगे बढ़ी। दयासागर पलंग से उठकर उसकी ओर बढ़ा।

वह बढ़ी।

यह बढ़ा।

चारों ओर शोर-सा मच रहा था। फिर-फिर विद्यासागर का अट्टहास सुनाई पड़ा।

दोनों मिलने को बढ़े।

घोष तीव्रता से हो रहा था।

दयासागर की आँख खुल गई।

प्रभात हो चुका था और राजीव की विशाल सेना तुमुल नाद करती हुई राजधानी की ओर बढ़ी चली जा रही थी।

*

पच्चीस

महाराज विद्यासागर के कक्ष में महारानी विशालाक्षी स्वर्ण-मंडित पलंग पर पड़ी बेचैनी से करवटें बदल रही थीं। आज महाराज के आने का निश्चित न था। सवेरे ही सेना को आक्रमण के लिए कूँच करना था।

महारानी सोचने लगीं, 'अब क्या होगा ? इस राज्य का विनाश तब क्या अवश्यम्भावी है ? कितने दिन तक चल सकेगा अन्याय, अत्याचार और पाप पर आधारित यह राज्य ?···कितने सुनहरे थे वे दिन जब मैं और दया····फिर बीच में आ गया यह दानव ! बिखर गई मोतियों की माला···चूर हो गये सुनहरे सपने। इतना अत्याचार, इतना अन्याय···ओह यह राज्य····इसका राजा····और फिर हुये उन पर अत्याचार, कोप—छोटा भाई, उसकी वाग्दता पत्नी ? क्या यह पाप नहीं है ? अन्याय की भी सीमा है कहीं—'

महारानी का जी घबड़ाने लगा था। वे बड़बड़ा उठीं, 'कौन से जुल्म इस दानव ने उन पर नहीं किये ?—सुख-सम्पत्ति से वंचित किया और फिर लात मार कर कुत्तों की तरह राजमहल से निकाल दिया। यह सब मेरे ही कारण तो हुआ न ?···फिर-फिर मैं इस नरक के कीड़े

को प्यार करूँगी ? मैं महारानी हूँ—वह महारानी जो अपना सब कुछ लुटा कर वास्तविकता को हृदय में छिपा कर रखे हुये हैं—वह ज्वाला-मुखी जिसे यदा-कदा फटने की भी स्वतन्त्रता नहीं है—ओह, कब होगा इस दानव का अन्त····? होगा भी या नहीं—'

वे फिर लेट गईं। मस्तिष्क थक चुका था, वे क्षण-भर में स्वप्न-लोक में आ गईं।

सामने खड़ा था दयासागर। वह उसे लक्ष्य करके मानो कह रहा था, 'इस अन्याय का प्रतिकार होकर रहेगा विशालाक्षी। यह देखो—एक हट्टा-कट्टा सा सुन्दर नवयुवक उसकी ओर बढ़ रहा था। उसके हाथ में एक थाल था और उस थाल में एक कटा हुआ शीस रक्खा हुआ था।

विशालाक्षी ने पहिचाना।

वह विद्यासागर का शीश था।

विशालाक्षी सोते-सोते काँप उठी।

फिर—

एकाएक उसकी आँख खुल गई। आधी रात जा चुकी थी किन्तु महाराज अभी तक न लौटे थे।

घोर सन्नाटा छाया हुआ था। महारानी ने आवाज दी 'दासी !'

प्रियवंदा ने आकर अभिवादन किया।

महारानी ने कहा, 'महाराज का समाचार चाहिए।'

दासी सिर झुका कर चली गई।

महारानी भयभीत-सी थीं। वातावरण की नीरवता एवं स्तब्धता उनके भय को और बढ़ा रही थी। वे चुपचाप लेटी रहीं। उनकी आँख लग गई।

वध-स्थल का दृश्य। जल्लाद दयासागर को घेरे खड़े हुए हैं। नग्न शरीर और मलिन मुद्रा में दयासागर नीची दृष्टि किये खड़े हुए हैं। तभी विद्यासागर का अट्टहास सुनाई पड़ा।

'वध करो' राजा ने पुरुष स्वर में कहा ।

जल्लाद नंगी तलवार लिए हुए आगे बढ़े । विशालाक्षी महाराज की ओर दौड़ी । 'क्षमा, क्षमा—'

विशालाक्षी चीख कर पलंग के नीचे गिर पड़ी ।

'क्या हुआ ? क्या डर गईं ?' महाराज का स्वर सुनाई दिया ।

विशालाक्षी महाराज की गोद में थी । वह बुरी तरह से काँप रही थी ।

उसके सिर पर हाथ फेरते हुए महाराज ने कहा, 'क्या स्वप्न देख रही थीं ?'

विशालाक्षी धीरे से बोलीं, 'हाँ, स्वप्न—भयानक स्वप्न । ओह—'

हल्की-सी चपत उसके गाल पर लगाते हुए महाराज ने कहा, 'पगली कहीं की । स्वप्न भी क्या कभी सच हुआ करते हैं ।'

किंचित आश्चर्य की मुद्रा में विशालाक्षी ने कहा, स्वप्न सच नहीं होते ? क्यों, होते तो होंगे । तब क्या होता है ?'

विद्यासागर ने कहा, 'मैं ठीक कह रहा हूँ । स्वप्न उन भावनाओं की प्रतिच्छाया मात्र हैं जिन्हें हमारा मस्तिष्क देता रहता है । जिस हम जाग्रत अवस्था में शुभ और अशुभ घटनाओं की कल्पना करते रहते हैं वही क्रम सुसुप्तावस्था में भी जारी रहता है । जिस प्रकार हम जाग्रतावस्था में सभी भावनाओं को पूर्णत्व नहीं प्रदान कर पाते उसी प्रकार सुसुप्तावस्था में भी हमारी भावनायें क्रियाशील नहीं हो पातीं । इसी प्रकार विचारों का क्रम जिस प्रकार जाग्रतावस्था में ठीक नहीं होता उसी प्रकार नींद में भी नहीं हो पाता । फिर स्वप्न कहाँ से सत्य हो सकता है ।

विशालाक्षी अब काफी संभल गई थी । बोली, 'किन्तु कभी-कभी तो स्वप्न में देखी हुई बात सच ही हो जाती है ।'

मुस्कराकर महाराज ने कहा, 'ऐसा तो कभी नहीं होता । जब हम

कोई बुरा स्वप्न देखते हैं तो भगवान से मनाते हैं कि वह झूठ ही निकले। किन्तु बात तो यह है कि ये दोनों ही अवस्थाएं भ्रमात्मक हैं।'

विशालाक्षी एक साँस लेकर बोली, 'किन्तु आज आप इतनी देर तक कहाँ रहे ? मुझे तो अकेले अच्छा नहीं लगता।'

विद्यासागर ने गम्भीर भाव से कहा, 'कल युद्ध प्रारम्भ हो रहा है। विशाल। उसी की तैयारी का निरीक्षण करने में अब तक शिविर में था।'

विशाल ने पूछा, 'कल होगा क्या ?'

विद्यासागर ने कहा, 'कल इन्द्र के सेनानायकत्व में हमारी फौजें युद्ध करेंगी। सुना है उनकी सेनायें आक्रमण के लिए रवाना हो गई हैं। हमारे गुप्तचरों ने बतलाया है कि निशानाथ इस सेना का संचालन कर रहे हैं। इन्द्र कल युद्ध में उन्हें ऐसा पाठ पढ़ायेगा कि वे जीवन-भर याद करेंगे। कल के युद्ध में हमारी विजय निश्चित है।'

विशालाक्षी पति के मुँह की ओर देखने लगी। वह निर्णय नहीं कर पाती थी कि पति की विजय से वह प्रसन्न हो या उदास। दयासागर—

अन्त में उसके मुँह से निकल ही पड़ा, 'और दयासागर का क्या होगा ?'

हँस कर विद्यासागर ने कहा, 'तुम्हें दया की बड़ी चिन्ता है विशाल। वह कायर.....'

कहकर वे चुप हो गये।

विशाल स्वयं अपने इस प्रश्न से लज्जित हो गई थी। बोली, 'अपनों की चिन्ता होना ही चाहिए महाराज। उन्होंने जो भूल की है वह लज्जाजनक है।'

गम्भीर होकर विद्यासागर ने कहा, 'अपनी इसी भूल के उसे मरना होगा।

विशाल मन ही मन में काँप गई।

विद्यासागर ने कहा, 'उसने विश्वासघात किया है। वह मेरी मृत्यु के लिए कटि-बद्ध है। वह स्वर्णपुर का महाराज बनने का स्वप्न देख रहा है, किन्तु स्वप्न कभी सच्चे नहीं होते।'

विशाल चुप रही। भगवान करे स्वप्न कभी सच्चे न हों।

*

छब्बीस

ग्रौर—

सचमुच उस दिन युद्ध की विभाषिका देख कर बड़े,-बड़े सूरमाग्रो
के दिल दहल उठे। प्रातः से लेकर संध्या तक ग्रविराम युद्ध चलत
रहा। लाशों के ढ़ेर लग गये। रण-चंड़िका की उग्रता से सारी
राजधानी गूंज उठी।

ग्रभी राजा विद्यासागर की सेना भलीभांति सुसज्जित भी न हो
पाई थी कि राजीव की सेना के तुमुल नाद से होती हुई राजधानी
एकदम चोंक कर उठ बैठी। राजीव की सेना सीधे राजमहल की ग्रो
बढ़ी चली जा रही थी। ग्रभी रात्रि का ग्रंधेरा शेष रहने के कारण
सड़कों पर सन्नाटा ही था। सेना का हाहाकारी शंखनाद सुन क
लोगों ने भीतर से द्वार बंद कर लिये। सेना ने भी उन्हें किसी प्रका
से भी परेशान न किया। जिसने किसी भी प्रकार का विरोध किय
उसे धरती पर सदा के लिये सुला दिया गया। दुर्ग के बाहर क
विस्तृत बाजार पार करती हुई सेना दुर्ग के द्वार के निकट पहुंच रह
थी। द्वार ग्रभी लगभग दो मील रह गया था कि राज्य की सेनाग्र
का भी तुमुल नाद सुनाई पड़ने लगा। राजा विद्यासागर की विशा

सेना दुर्ग के बाहर निकल पड़ी। आगे आगे हाथी पर इन्द्रसेन अस्त्र-शास्त्रों से लैस बैठा हुआ था।

शत्रु की सेना का घोष सुन कर निशानाथ ने अपनी सेना का प्रमाण रोक दिया। उन्होंने हरिदास से कहा, 'शत्रु की सेना निकट जान पड़ती है। हमको यहीं टक्कर लेनी चाहिये। हमारी दूसरी सेना कंठवर्द्धन की अध्यक्षता में दूसरी ओर से आ रही है। यदि हमने यहीं रूक कर युद्ध किया तो शत्रु की सेना अवश्य ही दो ओर से घिर जायगी।'

हरिदास घोड़े से उतरता हुआ बोला, 'आप ठीक कह रहें हैं। शत्रु की सेना को इस स्थान पर धूल में मिला कर हम आगे बढ़ेंगे।'

सेना ने इसी स्थान पर पड़ाव डाल दिये। हरिदास ने एक अच्छा-खासा व्यूह रच डाला। शत्रु को चारों ओर से घेर लेने की योजना बनने लगी।

उधर शत्रु की अपार सेना इसी ओर बढ़ती चली आ रही थी। उसको निकट आया जान निशानाथ की सेना भी अपने हृदय-भेदी नारों से आकाश को गुंजायमान करने लगी। पशु-पक्षी भी घबड़ा कर जंगल की ओर भागने लगे।

भगवान भास्कर भी रहे-सहे अंधकार का विनाश करके संसार को प्रकाश में ला रहे थे। क्षेत्र में चारों ओर नर-मुंड ही दिखलाई पड़ रहे थे।

घंटे भर के अंदर ही दोनों सेनायें आमने-सामने थी। एकाएक शंख-ध्वनि हुई और निशानाथ की सेना शत्रु की सेना पर टूट पड़ी।

युद्ध आरम्भ हो गया था।

निशानाथ इंद्रसेन की खोज में थे। वे युद्ध करते हुये आगे बढ़े चले जा रहे थे। हरिदास उनकी सुरक्षा के लिये पास ही युद्ध कर रहा था। जो भी हरिदास के सामने पड़ जाता था वह शीघ्र ही पृथ्वी

पर लौट जाता था। वे जल्दी ही शत्रु का सफाया कर देना चाहते थे। उन्होंने शत्रु-दल में हाहाकार मचा दिया था।

उधर इंद्रसेन का युद्ध देखने ही योग्य था। कोई भी योद्धा उसके सामने अधिक देर तक टिक न सकता था। निशानाथ के सैनिक बुरी तरह से मर रहे थे। वह शत्रु का सफाया करता हुआ निशानाथ की ओर बढ़ता चला आ रहा था। निशानाथ भी उसी की तलाश में थे।

कुछ भयभीत से होकर हरिदास ने निशानाथ से कहा, 'इस दुष्ट इंद्रसेन ने हमारे बहुत से सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया है। यदि यही क्रम रहा तो हमारी सेना के शीघ्र ही पैर उखड़ जायेंगे।' किसी भी प्रकार से इस दुष्ट को घेरना चाहिये।'

'आज मैं अवश्य ही इस दुष्ट का वध करूँगा' कहते हुये निशानाथ तीव्र गति से इंद्रसेन की ओर बढ़े। इंद्रसेन भी उसी ओर चला आ रहा था।

निशानाथ को निकट देख कर इँद्रसेन ने अट्टहास किया। क्रोध से निशानाथ की भवें तन गई।

दोनों में जम कर युद्ध होने लगा। इस युद्ध की भीषणता से धरती काँपने सी लगी। दोनों ही बराबरी के योद्धा थे। कभी निशानाथ सुरक्षा के लिये पीछे हटने लगते थे और कभी इंद्रसेन।

सैनिकों की टुकड़ियां जगह-जगह मोर्चा लगा कर लड़ रही थीं। इंद्रसेन की सेना के योद्धा लड़ने में अधिक प्रवीण, पटु और सुशिक्षित थे। अब तक सभी क्षेत्रों में उन्हीं की विजय हो रही थी। लड़ते-लड़ते संध्या हो चली थी किन्तु युद्ध का निर्णय कहीं भी दृष्टिगोचर न हो रहा था।

अंत में घबड़ाकर हरिदास ने कहा, 'हमारे सैनिक व्यर्थ में कट रहे हैं। आप इंद्रसेन से सीधा मोर्चा लीजिये नहीं तो हमारी हार

निश्चित है शत्रु-दल के सैनिक भीषण शस्त्रों का प्रयोग कर रहे हैं।

क्रोध से निशानाथ का चेहरा तमतमा उठा। वे इंद्रसेन पर और अधिक भीषणता के साथ प्रहार करने लगे। उनके इस आक्रमण से इंद्रसेन उधर अधिक घबड़ा उठा। वह घोड़े से उतर पड़ा। उसे धरती पर आया देख कर निशानाथ भी घोड़े से उतर पडे।

इंद्रसेन ने विहंस कर कहा, 'आज इन्द्रसेन के पल्ले पडे हो। अब जीवित घर न जा सकोगे।'

स्फुट-स्वर में निशानाथ ने कहा, 'मैं' तुझे युद्ध के लिये ललकारता हूं। प्रलाप करना कायरों का काम है। चल संभाल अपने को।'

निशानाथ ने कस कर तलवार का वार किया। इंद्रसेन अपने को न बचा सका। उसका बायाँ कंधा बुरी तरह से घायल हो गया।

किन्तु वह परम वीर था। अपने को बचा कर उसने भविष्य रूप से निशानाथ पर आक्रमण किया। निशानाथ ने पूरा वार ढाल लिया। इंद्रसेन और अधिक क्रुद्ध होकर बिशानाथ पर वार पर वार करने लगा। पैंतरा बदल कर निशानाथ ने जो तलवार का एक झटका दिया तो इंद्रसेन के हाथ से तलवार छूट गई। वह गिरते गिरते बचा।

निशानाथ ने एक अट्टाहास करके धरती पर गिरी हुई तलवार उसे उठा कर दे दी। किन्तु इंद्रसेन अब बहुत खिसिया सा गया था। वह झपट कर निशानाथ पर दौड़ा और कस कर वार किया। तलवार सीने के पास घुसी चली गई। निशानाथ कटे हुये पत्ते की भाँति धरती पर गिर पड़े।

इंद्रसेन लपक कर उनका सिर काटना ही चाहता था कि हरिदास आकर भिड़ गया। दोनों में काफी देर तक युद्ध हुआ।

निशानाथ को कोई आकर उठा ले गया।

अंधेरा हो गया था अतएव युद्ध रुक गया।

× × ×

आज राजीव के शिविर में उदासी छाई हुई थी। मरणासन्न निशानाथ बिस्तर पर लेटे हुये थे। उनके चारों ओर सामन्तों की भीड़ लगी हुई थी। बिस्तर के पास गंभीर और उदास भाव से राजीव नीचा सिर किये बैठे हुये थे। वैद्य भी निराशा में डोल रहे थे।

सन्नाटे को तोड़ते हुए हरिदास ने कहा, 'यह आघात घातक सा ही है, किन्तु कुछ उपाय तो करना ही चाहिये।'

राजीव ने गंभीर वाणी में कहा, 'आशा की देखा अत्यंत क्षीण है।'

वैद्य ने कहा, 'दशा चिन्तनीय है। यदि किसी पटु और प्रवीण वैद्य से सलाह ली जा सकती तो संभव है इनके प्राणों की रक्षा हो जाती। इनकी दशा प्रति क्षण गिरती ही जा रही है। विलंब ठीक नहीं।'

राजीव ने कहा, मैं तो यहाँ किसी सुनायधन्य चिकित्सक को जानता नहीं, हूँ, 'हमारे रंगपुर के चिकित्सक चूडामणि मृत्युंजय शास्त्री तो मुरदे में प्राण फूँक सकने की क्षमता रखते हैं। किन्तु इतने कम समय में उनका आना तो असंभव है।

हरिदास बोल उठे, 'कितनी दूर होगा रंगपुर ?'

राजीव ने कहा' 'लगभग २५ मील।'

हरिदास ने खड़े होते हुये कहा, 'मैं जा रहा हूँ। उन्हें लाने का प्रयास करूंगा। किन्तु वे मेरे कहने से चले ही क्यों आयेंगे ?'

कुछ सोच कर राजीव ने कहा, 'तुम राजेन्द्र से मिल कर उन्हें सरलता से ला सकोगे।'

हरिदास ने फौरन एक बढ़िया सा घोड़ा चुना, और रंगपुर की ओर रवाना हो गया।

उसके जाने के पश्चात् कंठकर्द्धन ने कहा, 'कार्य कठिन ही है।'

वैद्य जी ने कहा, 'आप ठीक कह रहे हैं। चौबीस घंटे से अधिक इनका जीवित रहना कठिन है। इतने समय के भीतर हरिदास का लौटना असंभव है। फिर भी मैं औषधियों के बल पर इन्हें जीवित रखने का प्रयास करूँगा।'

राजीव चुप रहे।

समय उड़ रहा था। दो घंटे, आठ घंटे, दस घंटे, बीस घंटे व्यतीत हो गये किन्तु हरिदास की पग-धूलि भी दृष्टिगोचर न हुई।

उदास भाव से राजीव ने कहा, 'अब निशानाथ का अंत निकट है। भाई को खोकर मैं भी अब युद्ध करके क्या करूँगा।'

कहते-कहते उनके नेत्र सजल हो गये।

सभी मौन बैठे थे।

वैद्य ने कहा, 'अब ये थोड़ी ही देर के मेहमान हैं। तलवार के विष का प्रभाव व्यापक होता जा रहा है।'

राजीव ने एक निश्वास ली और कहा, 'मैंने स्त्री के पीछे भाई को खोया है इसका मुझे जीवन भर पश्चाताप रहेगा। हाय, संसार में सब कुछ मिल जाता है किन्तु निशानाथ सा प्रिय और आज्ञाकारी भाई नहीं मिल सकता। मैं लोगों को क्या मुँह दिखलाऊँगा?'

कह कर राजीव बालकों की भाँति फूट-फूट कर रोने लगे।

*

सत्ताई

रंगपुर का एक छोटा सा स्वच्छ घर। एक कक्ष में वैद्यराज बै
रोगियों की परीक्षा कर रहे हैं।

एक रोगी को देख कर वे बोले, 'तुम्हें राज-यक्ष्मा है। औषधि
जाओ पंद्रह दिन में ठीक हो जाओगे।'

वह रोगी औषधि लेकर चला गया।

दूसरे रोगी की परीक्षा करके वैद्यराज ने कहा, 'तुम ठीक नहीं ह
सकते। पन्द्रह दिन के अन्दर तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। जाओ।'

रोगी भौंचक्का सा वैद्यराज के मुँह की ओर देखता रह गया।

वह साहस करके बोला, 'मैं तो अपने को बहुत ही स्वस्थ अनुभ
कर रहा हूँ वैद्यराज जी।'

वैद्यराज ने कहा, 'तुम्हारा स्वास्थ्य तुम्हें धोखा दे सकता है किन्
वह मृत्युंजय शास्त्री की आँखों को धोखा नहीं दे सकता।'

वह रोगी उठ कर चला, किन्तु द्वार तक पहुँचते-पहुँचते वह सि
पकड़ कर बैठ गया।

लोगों ने वैद्यराज का ध्यान उस ओर आकर्षित किया। वैद्यरा
जी कहने लगे, 'इसके हृदय की गति अनिश्चित और तीव्र है। मैं नेत्र

से हृदय की भाषा पढ़ लेता हूँ। इसके हृदय की गति अधिक समय तक कार्यशील नहीं रह सकती। हो सकता है इसकी अभी मृत्यु हो जाय।'

और—

पन्द्रह मिनिट के अन्दर ही उसकी मृत्यु हो गई। उसका शव उसके घर पहुंचा दिया गया।

एक सज्जन ने कहा, 'आपने जो उसके मुंह पर मृत्यु की घोषणा कर दी वह भी तो मृत्यु का कारण हो सकती है।'

वैद्यराज जी ने कहा, 'यह भ्रम है। मेरी घोषणा तो उसे बल पहुँचाने में सहायक हो सकती थी। हम आपत्ति को सामने देखकर उससे लोहा लेने की तैयारी करने लगते हैं। जिस व्यक्ति के मस्तिष्क में शक्ति नहीं है वह मृत के समान है। मैं समझ गया था कि उसकी अभी मृत्यु हो जायगी, किन्तु मैंने उसकी सहन-शक्ति को बढ़ावा देने के लिये पन्द्रह दिन की घोषणा कर दी थी।'

सज्जन ने पूछा, 'किन्तु आप यह कैसे जान सके?'

कुछ मुस्करा कर वैद्यराज ने कहा, 'मनुष्य के नेत्र ही उसके स्वास्थ्य के द्योतक होते हैं। मृत्यु का आभास आँखों से अभिव्यक्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त सुख-दुख, पीड़ा, वेदना, उल्लास, वैकल्य आदि का व्यापक प्रभाव नेत्रों पर ही पड़ता है।

सब लोग चुप रह गये। इसी समय एक संभ्रान्त व्यक्ति ने आकर वैद्यराज को प्रणाम किया तथा बोला, 'हमारे कीर्तिपुर के महाराज थे आज तीन दिन से सिर में दर्द हो रहा है। उन्होंने आपको बुलाने के निमित्त मुझे सद्रव्य भेजा है।'

कह कर उसने सौ स्वर्ण मुद्रायें वैद्यराज के सामने रख दीं।

बिना स्वर्ण-मुद्राओं को स्पर्श किये ही वैद्यराज ने कहा, 'मैं जन-साधारण का वैद्य हूँ। आपके महाराज को द्रव्य के बल बीसों धुरंधर वैद्य मिल जायेंगे। मैं न जा सकूंगा। मेरा समय इन साधारण श्रेणी

वैद्यराज ने कहा, 'मैं इस समय सब कुछ कर सकता हूं। जल्दी करिये।'

थोड़ी ही देर में दोनों घोडे पर सवार स्वर्णपुर जाते दिखलाई पड़ने लगे।

मार्ग में वैद्यराज ने पूछा, 'वैसे वहां क्या कोई वैद्य नहीं मिला क्या ?'

हरिदास ने कहा, 'मिला तो, किन्तु आप जैसा गुणी व्यक्ति ही—'

बीच ही में वैद्यराज बोल उठे, 'जो कुछ करता है ईश्वर करता है। राजीव एक त्यागी पुरुष हैं। भगवान उनके साथ न्याय करेगा।'

समय कम था, अतएव हरिदास ने घोड़े को तेजी से आगे बढ़ाया। रात्रि के अंधकार में भी घोड़ा हवा से बात कर रहा था। पर्वत, नदी, नाले सभी पार हो रहे थे।

एकाएक वैद्यराज बोल उठे, 'प्रभात निकट मालूम पड़ता है, अब कितनी दूर तुम्हारा स्थान रह गया होगा ?'

हरिदास ने कहा, 'अभी दस मील से कम न होगा। हमको हर हालत में एक घटे के अंदर पहुँचना है।'

वैद्यराज ने एक सांस लेकर कहा, 'पं० चक्रधर अवस्थी ने चौथेपन में पुत्र पाये, किन्तु वे उनका कोई सुख न उठा सके। उनका जीवन भी व्यर्थ हो गया।'

नदी-तट पर पहुँच कर घोड़ा रुक गया।

हरिदास ने कहा, 'जल की गहराई अधिक जान पड़ती है।'

वैद्यराज के चेहरे पर चिंता उमड़ पड़ी। वे बोले, 'विलम्ब तो घातक होगा हरिदास। रोगी के प्राण प्रातःकाल ही करवट बदलते हैं। जल्दी चलो।'

ईश्वर का नाम लेकर हरिदास ने घोड़े को नदी में डाल दिया। अश्व चतुर था। सावधानी से पैर बढ़ाता आगे बढ़ा। वैद्यरॉज भजन गा रहे थे। नदी सकुशल पार हो गई।'

जिस समय दोनों कुटी के द्वार पर पहुँचे उस समय प्रातः की सफेदी झलक सी मारने लगी थी।

पैरों की आहट पाकर कुटी के अन्दर से स्वर सुनाई दिया, 'आ गये। हरिदास आ गया।'

पं० मृत्युंजय शास्त्री ने निशानाथ का भली भाँति निरीक्षण किया। बहुत ही गंभीर थे। सभी की दृष्टि शास्त्री जी के मुंह की ओर लगी हुई थी।

एकाएक शास्त्री जी के मुँह से निकला, 'थोड़ा जल चाहिये।'

जल आ गया। अपने बटुये से कई औषधियाँ उन्होंने निकालीं। एक औषधि पानी में घिस कर उन्होंने निशानाथ के मुंह में भर दी। दूसरी औषधि घाव पर मल दी। तीसरी औषधि वे नाक के पास ले जाकर बार-बार सुंघाते लगे।

अब राजीव का मुंह खुला, 'कुछ आशा भी है?'

शास्त्रीजी ने स्वीकारात्मक ढंग से केवल सिर हिला दिया।

यह क्रम लगभग एक घंटे तक चलता रहा।

सवेरे ही से कुटी के आसपास सेना एकत्र होने लगी थी। सभी निशानाथ के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जानना चाहते। उधर शत्रु-दल में उनकी मृत्यु का समाचार फैल चुका था।

प्रातः सूर्य भगवान के उदय होते ही निशानाथ ने भी नेत्र खोलना शुरू कर दिये। सभी के चेहरों पर प्रसन्नता खेल उठी। राजीव ने भाई के निकट पहुंच कर शीश पर हाथ फेरना शुरू कर दिया।

सर्व प्रथम निशानाथ ने दोनों हाथ उठा कर पं० मृत्युंजय शास्त्री को प्रणाम किया। शास्त्रीजी का चेहरा खिल उठा।

औषधि की दूसरी मात्रा मुंह में डालते हुये कहा, 'थोड़ी मात्रा में दूध चाहिये।'

निशानाथ को थोड़ा-थोड़ा दूध दिया जाने लगा। दूध में भी एक

पीली-पीली औषधि मिला दी गई थी। इस औषधि को पान करते
निशानाथ उठ कर बैठने की चेष्टा करने लगे।

राजीव ने उन्हें रोकते हुये कहा, 'अभी ऐसी चेष्टा मत क
निशानाथ।'

हँसते हुये मृत्युंजय शास्त्री ने कहा, 'उठना क्या, ये अभी दो
में युद्ध करने योग्य हो जायेंगे। अब वे स्वस्थ हैं। उठो निशानाथ।'

और—

निशानाथ उठ कर बैठ गये।

राजीव ने कहा, मैं कितना कृतज्ञ हूँ शास्त्री जी। आपने नि
को जीवन दान दिया है। मैं आपको क्या भेंट कर सकता हूँ।'

मुस्कराते हुये शास्त्री जी बोले, 'मैं जो कुछ चाहता हूं वह
कुछ मुझे मिल जायगा। एक प्रार्थना है।'

राजीव ने कहा, 'कहिये महाराज।'

शास्त्री जी ने कहा, 'मैंने कल से भोजन नहीं किया है। क्या
मिल सकेगा?'

फौरन शास्त्री जी के भोजन की व्यवस्था की गई। जब शास्त्री
दूसरे कक्ष से भोजन करके लौटे तो उन्हें मालूम हुआ कि निशान
स्नान करने के लिए नदी-तट पर गये हैं। सभी प्रसन्न थे।

मृत्युजय शास्त्री लौट गये। राजीव ने उन्हें कुछ देना चाहा कि
शास्त्री जी ने कुछ न लिया।

एक सैनिक ने आकर सूचना दी, 'शत्रु-सेना बढ़ी चली आ
है।

निशानाथ ने फौरन अस्त्र-शस्त्र उठाते हुये कहा, 'सेना को तै
होने की आज्ञा दो। मैं ही उसका नेतृत्व करूँगा।'

*

अट्ठाईस

इंद्रसेन बौखलाया हुआ था। वह अपनी समझ से निशानाथ को समाप्त कर चुका था, किन्तु दूसरे ही दिन निशानाथ को झपट कर अपनी ही ओर आते देखकर वह क्रोध से भर गया।

'आ, आज मैं तेरा काल बन कर आया हूँ' कह कर निशानाथ ने उसे ललकारा।

इन्द्रसेन ने अट्टहास किया और बोला, 'तू तो अब मृतक के ही समान है। मर कर जी उठने वाले निर्लज्ज........'

तभी निशानाथ ने उस पर वार कर दिया। इन्द्रसेन बेखबर था किन्तु फिर भी चोट बचा गया। उसने निशानाथ ने वार किया वह इन्द्रसेन बचा गया।

दोनों में गहरा युद्ध होने लगा। इन्द्रसेन महान योद्धा था। उसकी वीरता के चरचे दूर-दूर तक प्रसिद्ध थे। विरुदावलियाँ गाई जाती थीं। उसमें तथा अन्य योद्धाओं में इतना अन्तर था कि वह स्वयं एक सच्चरित्र व्यक्ति था तथा धर्म-युद्ध के पक्ष में रहता था। इस युद्ध में उसकी रुचि न थी किन्तु वह पिता का भक्त था। पिता की आज्ञा पर वह प्राण भी दे सकता था।

चारों ओर भीषण युद्ध हो रहा था। मार काट जारी थी। सेनाओं की टुकड़ियाँ जगह-जगह पर भिड़ी हुई थीं। कंठवर्द्धन, पदवर्द्धन,

सुकंठ एवं हरिदास भयानक रूप से युद्ध कर रहे थे। सन्ध्या होते-होते सारी भूमि लाशों से पट गई।

इतने में पूर्व की ओर से सेना का एक काला-सा बादल आता दिखलाई दिया। बीस हजार सैनिकों को लिये हुए रुद्रसागर इसी ओर चला आ रहा था। उसके आने से इन्द्रसेन की सेना का उत्साह द्विगुणित हो गया। निशानाथ की सेना के छक्के छूटने लगे।

पास ही में लड़ते हुए हरिदास ने कंठवर्द्धन से कहा, 'अब विजय की आशा त्याग देना चाहिये।'

कंठवर्द्धन कुछ बोला नहीं। रुद्रसागर की सेना निशानाथ की ही ओर बढ़ी चली आ रही थी। इन्द्रसेन का चेहरा खिल उठा।

किन्तु निशानाथ हतोत्साह नहीं हुये। युद्ध बन्द होने में अब थोड़ा ही समय रह गया था। रुद्रसागर की सेना बिल्कुल निकट थी। निशानाथ को संकट में जानकर हरिदास भी अपनी सेना के साथ इन्द्रसेन से आ भिड़ा।

निशानाथ ने चिल्लाकर कहा, 'तुम आगे जाकर उस दुष्ट रुद्रसागर से भिड़ो। मैं इस इन्द्रसेन को आज समाप्त करके ही दम लूंगा।'

हरिदास अपनी पाँच हजार सेना के साथ मुड़कर रुद्रसागर की सेना पर टूट पड़ा। सेना सेना से भिड़ी और हरिदास सीधा रुद्रसागर से जाकर भिड़ गया। तुमुल युद्ध होने लगा।

क्रोध में भर कर इन्द्रसेन ने निशानाथ पर तलवार का भरपूर वार किया। निशानाथ ने भी उसी समय कस कर वार किया। इस वार ने कमाल किया। निशानाथ की तलवार इन्द्रसेन की तलवार को काटती हुई उसके सीने में घुस गई। इन्द्रसेन लड़खड़ाया, उसी समय निशानाथ ने आगे बढ़ कर तलवार से इन्द्रसेन का सिर काट लिया।

इन्द्रसेन की सेना भागने लगी। निशानाथ की सेना हर्ष से जय-जयकार करने लगी। अब शत्रु दल में बुरी तरह से भगदड़ पड़ गई थी। थोड़ी ही देर में मैदान साफ हो गया, रह गई केवल निशानाथ की सेना जयजयकार करती हुई।

उधर हरिदास उठकर रुद्रसागर से युद्ध कर रहा था। इन्द्रसेन के

मरने का समाचार रुद्रसागर को मिल चुका था। वह आगे बढ़कर इन्द्रसेन के शव पर अपना अधिकार कर लेना चाहता था किन्तु हरिदास ने अभी तक उसको एक इंच भी आगे न बढ़ने दिया।

घनघोर युद्ध हुआ। हरिदास को अकेला जान कर निशानाथ ने अपनी सेना को भी उसी ओर भेज दिया। वैसे ही रुद्रसागर आगे न बढ़ पा रहा था। अब शत्रु की ओर अधिक सेना आ जाने से वह विवश हो गया।

उसने बड़े मैत्री भाव से हरिदास से कहा, 'आज का युद्ध समाप्त होता है। मैं केवल इन्द्रसेन की लाश आपसे मांग रहा हूं।'

स्फुट-स्वर में हरिदास ने कहा, 'इसके लिए प्रार्थना राजीव जी से जाकर करो। मैं इस सम्बन्ध में तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता।'

युद्ध बन्द हो गया था। सेनाएं शिविर की ओर लौट पड़ीं। आज की विजय से सेना परमोत्साहित और प्रसन्न थीं। आगे-आगे निशानाथ चल रहे थे। उनके दाहिने हाथ में इन्द्रसेन का कटा हुआ सिर लटक रहा था।

शिविर में पहुंच कर निशानाथ ने इन्द्रसेन का कटा हुआ सिर बड़े भाई के चरणों में डाल दिया।

राजीव ने प्रसन्न होकर निशानाथ को गले लगा लिया।

× × ×

राजमहल के प्रमुख कक्ष में जड़ाऊ कुर्सी पर शोक-मुद्रा में सिर झुकाए राजा विद्यासागर बैठा हुआ था और सामने दूसरी कुर्सी पर महारानी विशालाक्षी मौन बैठी हुई पति की ओर देख रही थीं।

उनके ठीक सामने खुले हुए केश, मलिन वस्त्र और अस्त-व्यस्तावस्था में सुनयना खड़ी हुई थीं।

धीमे स्वर में राजा विद्यासागर ने कहा, 'हम शत्रु से इस बात की कैसे आशा कर सकते हैं बेटी ?'

सुनयना ने दृढ़-स्वर में कहा, 'किन्तु मुझे प्रत्येक दशा में पति का शीश चाहिए। बिना स्वामी के शीश के मैं कैसे सती हो सकती हूं ?'

कुछ सोच कर विद्यासागर ने रुद्र को बुलाने की आज्ञा दी।

रुद्रसागर ने आकर अभिवादन किया।

राजा ने कहा, 'सुनयना अपने पति के साथ सती होना चाहती है। उसे इन्द्रसेन का शीश चाहिये रुद्र।

बहुत ही उदास भाव से रुद्रसागर ने कहा, 'रण-क्षेत्र से हम केवल इंद्रसेन का शरीर ही ला सके हैं। शीश उन्हीं लोगों के अधिकार में है। वह कैसे मिल सकता है ?'

कुछ बिगड़कर राजा ने कहा, 'तब क्या हमारी सारी शूर-वीरता उन दोनों लड़कों के चरणों में जाकर समाप्त हो गई ?'

रुद्रसागर ने कहा, 'यह युद्ध है दादा। बिना उन्हें पूर्णरूपेण पराजित किये हम किसी भी वस्तु पर अपना अधिकार नहीं जमा सकते। मेरा तो आज भी यही प्रस्ताव है कि उनसे किसी न किसी प्रकार सन्धि ही कर लेना चाहिए। वे लोग परम वीर हैं।'

भीतर ही भीतर क्रोध को दबाता हुआ राजा विद्यासागर बोला, 'हूँ। तब तक अपने को इस कार्य के लिए अशक्त ही समझते हो।'

निर्भीक भाव से रुद्रसागर बोला, 'यह बिल्कुल सत्य है। मुझे तो अब चारों ओर विनाश ही विनाश दिखलाई पड़ रहा है। हमने यह लड़ाई जान-बूझकर मोल ली है। हम गलती से उन्हें अकेला और साधारण व्यक्ति समझ बैठे हैं। आज का युद्ध देखकर मैं तो हैरत में रह गया हूँ। उनके सैनिक लड़ रहे थे और स्वयं हमारी प्रजा 'जय-जयकार' के नारों से उनकी सेना का उत्साह बढ़ा रही थी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं हमारी सेना हमारे शासन से ऊब उठी है। तब हमारी विजय कैसे होगी दादा ?

सिर हिलाता हुआ राजा बोला, 'मुझे उपदेश देना बन्द करो रुद्र। मैं स्वयं सब कुछ समझता हूँ। उनका बिनाश मेरे ही हाथों होगा। तुम अब जा सकते हो।'

रुद्रसागर धीरे से चला गया।

सुनयना ने कहा, किन्तु मेरे पति का शीश......'

राजा ने कहा, 'उसका इस समय प्राप्त कर लेना मेरे लिए असंभव है बेटी। मैं असमर्थ हूँ।'

सुनयना ने एक बार पूरे नेत्र खोल कर श्वसुर की ओर देखा और धीरे से कक्ष के बाहर हो गई।

विद्यासागर ने उसके नेत्रों में एक ज्योति पुंज देखी।

वह कुछ भयभीत सा हो गया।

उनत्तीस

रात्रि के घोर अंधकार में—

घने वृक्षों के नीचे-नीचे सोलहों शृंगार किये, वीर-वेश में एक स्त्री, हाथ में नंगी तलवार लिये एक निदिष्ट मार्ग की ओर बढ़ी चली जा रही है। वह अबाध गति से चल रही है। मार्ग के कंकड़, पत्थर, वृक्ष, काँटे कोई भी उसका पथ अवरुद्ध नहीं कर पाते। वह परम सुन्दरी है और युवती। उसके चेहरे पर मूर्तिमान तेजस्विता खेल रही है। वह कौन है ?

वह सुनयना है—वीर गति को प्राप्त इन्द्रसेन की विधवा पत्नि। वह स्वर्णपुर के राजा अहंकारी विद्यासागर की पुत्र-वधू है। वह पति के शीश के साथ चिता में जल कर अपने पतिव्रत के ऋण की अंतिम पाई चुका देना चाहती है। तब तक कहाँ जा रही है इस अंधेरी और आधी रात में ?

वह निशानाथ के साथ युद्ध करने जा रही है। वह या तो विजयी होकर अपने पति का शीश प्राप्त करेगी और नहीं तो युद्ध में प्राण देकर अपने कर्तव्य से मुक्त होकर पति का पदानुसरण करेगी। उसे अपनी विजय का विश्वास है।

राजीव के शिविर के निकट पहुंच कर वह ठिठुकी।

पहरेदारों ने सचेत होकर उसे घेर लिया।

सुनयना ने कड़कड़ाती आवाज में कहा, 'मैं निशानाथ को युद्ध के लिए ललकारने आई हूँ। मुझे उनके पास ले चलो।'

पहरेदार एक दूसरे का मुँह आश्चर्य के साथ देखने लगे। सुनयना ने फिर स्फुट-स्वर में कहा, मैं विलम्ब नहीं चाहती। मैं रुक नहीं सकती, मुझे निशानाथ का शिविर बतला दो।

एक पहरेदार ने भयभीत होकर कहा, 'देवी भगवती, आप ठहरें। मैं उन्हें सूचना देने जा रहा हूँ।'

दो पहरेदार राजीव के शिविर की ओर दौड़े।

इस असामार्थक घटना से सर्वत्र लोग जागने लगे। सैनिकों में अफवाह फैल गई कि साक्षात चंडिका युद्ध करने आई हैं। अधिकाँश भयभीत हो उठे। सैनिक उठकर सुसज्जित होने लगे।

हरिदास ने सुनयना के निकट आकर प्रणाम किया तथा कहा, 'देवी जी आने का उद्देश्य कहें। हम लोग आपकी सेवा कर सकते हैं?'

सुनयना ने गम्भीर वाणी में कहा, 'मैं अपने पति का शीश लेने आई हूँ। आशा है आप समझ गये होंगे।'

हरिदास को परिचय मिल गया था। वह बोला, 'मैं समझ गया हूँ। आप ठहरें, मैं अभी आता हूँ।'

हरिदास ने राजीव को जाकर सब कुछ बता दिया। राजीव ने निशानाथ से थोड़ी देर परामर्श किया, फिर हरिदास के साथ अकेले ही सुनयना से मिलने चल पड़े।

अब तक सेना में काफी खलबली पड़ गई थी। लोग न जाने कैसी कैसी बातें कर रहे थे। नाना प्रकार के अनुमान लगाये जा रहे थे।

राजीव को आता देख कर चारों ओर जय के नारे लगने लगे। हरिदास, कंठवर्द्धन, सुकंठ, पदवर्द्धन सभी वहाँ पहुँच गये।

राजीव के आते ही सुनयना ने उन्हें झुककर प्रणाम किया।

गम्भीर वाणी में राजीव ने कहा, 'मैं राजीव हूँ सती सुनयना। आप किस हेतु शत्रु-शिविर में पधारी हैं इसका कारण कहें।'

सुनयना ने कहा, 'मैं अपने पति के साथ सती होना चाहती हूँ। आप मेरी सहायता करें।

विनम्र वाणी में राजीव ने कहा, 'मैं सती की प्रत्येक प्रकार से सहायता करने के लिए प्रस्तुत हूँ। आज्ञा दीजिए।'

सुनयना बोली, 'सती होने के लिए मुझे अपने पति का शीश चाहिए। क्या आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे ?'

क्षण भर रुक कर राजीव ने कहा, 'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, किन्तु मेरी भी एक प्रार्थना है।'

सुनयना ने कहा, 'आप आज्ञा दें।'

राजीव ने कहा, 'आप धन्य हैं, यदि आपके सती होने की प्रक्रिया का भार आप मुझ पर डाल सकें तो—'

'अर्थात् ?' सुनयना ने पूछा।

राजीव कहने लगे, 'मैं अभी चिता का प्रबन्ध करता हूँ, आप इस क्रिया को यहीं पूरी होने दें।

सुनयना बोल उठी, 'आप धन्य है। मैं इसके लिए प्रस्तुत हूं।'

राजीव ने हरिदास को फौरन चिता तैयार करने की आज्ञा दी। चिता जितनी सुन्दर, भव्य, आकर्षक एवं पुनीत हो सकती थी उतनी तैयार की गई। चिता के आस-पास हजारों सैनिकों की भीड़ थी। सुनयना साक्षात देवी-सी लग रही थी। उसके दर्शन से मानो हृदय के पाप नष्ट हो रहे थे।

अपने हाथ से राजीव ने इन्द्रसेन का कटा हुआ शीश सुनयना को लाकर दिया। सुनयना कई सैनिकों के साथ नदी-तट पर पहुँची तथा शीश को स्नान करा दिया। वहाँ से लौट कर वह चिता के निकट आई। उसने सारी एकत्र जनता को प्रणाम किया तथा पति का सिर गोद में लेकर चिता में बैठ गई। राजीव ने स्वयं अपने हाथों से चिता को अग्नि दी। चिता धू-धू करके जल उठी। सुनयना हाथ जोड़े बैठे हुए थी। थोड़ी ही देर में सब कुछ जल कर स्वाहा हो गया। उस समय रात्रि एक घंटा शेष थी।

भीड़ ने नारा लगाया, 'सुनयना सती की जय हो।'

उस समय राजमहल की दुनियां सो रही थी।

तीस

प्रातः सुनयना के सती हो जाने का समाचार सुनकर राजा विद्यासागर को क्षोभ भी हुआ और क्रोध भी। जिस परिस्थिति में सुनयना शत्रु के शिविर में जाकर सती हुई थी उसे स्मरण कर उसे लज्जा भी आ रही थी। वहाँ के एक व्यक्ति ने आँखों देखा हाल उसे आकर सुनाया था। राजीव की सहृदयता और सैनिकों का सुनयना के प्रति श्रद्धा-भाव सुनकर उसे सुनयना पर भी बड़ा क्रोध आ रहा था।

राजमहल में सर्वत्र सुनयना-सती की चर्चा थी। केवल विशालाक्षी मौन थी। राज्य का भविष्य उसकी आँखों के आगे नाच रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि वह स्वयं विधवा हो गई है। उसके मन में आया कि वह एक बार फिर सन्धि के लिये पति को प्रेरित करे, किन्तु उनकी क्रोधपूर्ण मुद्रा देख कर उसका साहस न हुआ।

आज किसी ओर से भी युद्ध के बाजे न बजे। ऐसा प्रतीत होता था कि इन्द्रसेन के मृत्यु शोर के सम्बन्ध में दोनों दल छुट्टी मना रहे थे।

आज दिन भर विद्यासागर अपने कक्ष से बाहर नहीं निकला। किसी ने उसके कक्ष में जाने का साहस भी नहीं किया। वह किसी गहन-विचार-धारा में दिन-भर डूबा रहा। वह किसी निर्णय पर पहुंचना चाहता था।

सन्ध्या को उसने रुद्रसागर को बुला भेजा।

रुद्रसागर चुपचाप आकर उसके निकट बैठ गया।

थोड़ी देर चुप रह कर राजा ने कहा, 'यह युद्ध तो जीतना ही होगा रुद्र। इन्द्रसेन की पराजय और मृत्यु से जो क्षति मेरी हुई है उसे पूरा करने का एक मार्ग युद्ध ही हो सकता है। आज मेरा मस्तिष्क बड़ी उलझन में है, इसीलिए उचित परामर्श के लिये मैंने तुम्हें बुला भेजा है।'

रुद्रसागर बड़ी कड़ी कड़ी बातें करने आया था, किन्तु भाई को नम्र और दुखी देखकर वह द्रवित हो गया। वह भी समझ चुका था कि युद्ध के अतिरिक्त अब और कोई चारा नहीं है किन्तु वह यह भी समझ चुका था कि युद्ध जीत लेना अब सरल कार्य नहीं है। कल की पराजय ने उसका हृदय तोड़ दिया। वह जानता था कि सेना के हौसले भी पस्त हो गये हैं किन्तु अब और उपाय ही क्या था ?

उसने धीरे से कहा, जैसी आपकी आज्ञा हो। यदि हम युद्ध करना न भी चाहें तो वे लोग कब चुप बैठने वाले हैं। युद्ध का परिणाम कुछ भी हो किन्तु यह मानना पड़ेगा कि शत्रु-दल किसी प्रकार भी लड़ने में तुमसे कमजोर नहीं है।

अब राजा विद्यासागर की भवों पर बल पड़ने लगे। वह स्फुट-स्वर में बोले, 'हमारी विजय निश्चित है। इन्द्रसेन के वध से हमारी विजय निश्चित है। इन्द्रसेन के वध से हमारी शक्ति कुछ कम हो गई है यह सोचना मूर्खता है। हम दोनों भाई अजेय हैं।

रुद्रसागर उत्साहित होकर बोला, 'आप चिंता न करें दादा। मैं कल ऐसा युद्ध करूँगा कि राजीव और उसकी सेना को प्राणों के लाले पड़ जायेंगे। आपको पराजित करना संसार में किसी के लिये भी टेढ़ी खीर है। मैं कल पचास हजार सेना लेकर उन पर आक्रमण करूँगा। ऐसा आक्रमण करूँगा जिसका उन्हें पता भी न होगा।'

अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा बोला, 'मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है रुद्र। मैं क्या तुम्हारा बल जानता नहीं हूँ ? कहाँ राजीव और कहाँ तुम ? वे क्षण भर भी तो तुम्हारे सामने न ठहर सकेंगे।

रुद्रसागर ने कहा, 'आप चिन्ता छोड़ कर विश्राम करें। मैं पं० इन्द्रसेन नहीं हूं जिसे वे मार लें। कल मैं इन सब बातों का बदला चुका कर रहूँगा।'

राजा ने कहा, 'तुम मुझसे किस प्रकार की सहायता चाहते हो रुद्र? रुद्रसागर ने कहा, 'आप केवल मेरे आक्रमण की प्रतीक्षा कीजिये। मेरे आक्रमण की सारी कार्यवाई गुप्त रहेगी। मैं किस समय, किस प्रकार से तथा कहाँ आक्रमण करूँगा यह कोई न जान सकेगा। आपका तो केवल आशीर्वाद चाहिये।

राजा विद्यासागर आज वास्तव में प्रसन्न था। वह रुद्रसागर की शक्ति और उसके युद्ध-कौशल को जानता था। बोला, 'मुझे विश्वास है कि शत्रु तुम्हारे सामने न टिक सकेगा। मैं आज तुम्हारी उत्साह-वर्द्धक बातें सुन कर बड़ा ही प्रसन्न हूं। अब मुझे अपनी विजय पर विश्वास हो गया है।

रुद्रसागर ने खड़े होते हुए कहा, 'मैं जा रहा हूं। आपकी कृपा से दो-तीन दिन के अन्दर ही आपके चरणों में दोनों भाइयों का शीश लाकर डाल दूंगा। अभी तक उनका किसी योद्धा से पाला नहीं पड़ा। मैं आपके चरणों की शपथ खाकर कहता हूँ कि जब तक इन दोनों भाइयों का वध न कर दूंगा इस राजमहल में लौट कर न आऊँगा।

प्रसन्न होकर राजा ने कहा, 'शाबास, अब मैं समझ गया कि राज्य, मेरी और मेरे सिद्धान्तों की रक्षा हो गई। इन दोनों भाइयों के समाप्त होते ही मैं इस राज्य की विश्वासघातिनी प्रजा को भी अच्छी तरह समझ लूंगा। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। जाओ, तुम्हारी अवश्य ही विजय होगी।'

रुद्रसागर अभिवादन करके चला गया। उसके जाने के बाद राजा ने महारानी विशालाक्षी को बुला भेजा।

महारानी ने देखा कि महाराज के चेहरे से पुत्रशोक की वेदना लुप्त-सी हो गई है।

महाराज ने मुस्कराते हुए कहा, 'मैं इस समय अत्यन्त प्रसन्न हूँ विशाल....'

बात काट कर रानी ने उत्तर दिया, 'आप कैसी बातें कर रहे हैं महाराज ? पुत्र-शोक क्या इतनी जल्दी भूलने की वस्तु है ?'

राजा बोल उठा, 'युद्ध-क्षेत्र में वीर-गति प्राप्त करने वाले पुत्र के लिये माता-पिता रुदन नहीं किया करते। यह कायरों का काम है। उसकी मृत्यु का बदला लेना ही उसके प्रति वास्तविक समवेदना प्रकट करना होगा। तुम निश्चित रूप से समझ लेना विशाल, कि अब उन दोनों भाइयों की कुशल नहीं है। साक्षात् भगवान भी अब उनकी रक्षा नहीं कर सकते।

विशालाक्षी ने कहा, 'ईश्वर करे आपकी विजय हो, किन्तु गत युद्ध में उनकी सेना ने जिस वीरता का परिचय दिया है वह विस्मरण करने योग्य बात नहीं है। क्या आप इन्द्रसेन की अपेक्षा रुद्रसागर को अधिक बली समझते हैं ? हां, आपकी बात और है।

राजा विद्यासागर ने कहा, 'किन्हीं अंशों तक तुम्हारा कहना ठीक ही है, किन्तु रुद्रसागर को तुम अभी तक नहीं जानतीं। इन्द्रसेन सदैव धर्म-युद्ध के पक्ष में था। उसने धर्म-युद्ध ही में अपने प्राण दिये हैं। किन्तु रुद्रसागर के माया-युद्ध को समझना साधारण काम नहीं है। उसका युद्ध-कौशल संसार में अद्वितीय है। स्वयं मैं भेद को नहीं समझ पाता। जैसे मुझे संसार में कोई मार नहीं सकता। इसका भेद मेरे अतिरिक्त और कोई नहीं जानता।

कुतूहल के शब्दों में मुस्करा कर महारानी ने कहा, 'और वह भेद आज तक मुझे भी आपने नहीं बतलाया।'

मुस्कराकर राजा ने कहा, 'मैं अजेय हूँ यह बात उन दोनों भाइयों को कदाचित् नहीं मालूम। दस हजार योद्धाओं के बीच में घिर जाने पर भी मेरी मृत्यु नहीं हो सकती। तुम विश्वास करो विशाल, कि मैं केवल अपनी स्वाभाविक मृत्यु ही से मर सकता हूँ।'

विशाल आश्चर्य के साथ पति के मुंह की ओर देख रही थी। गंभीर वाणी में राजा ने कहा, 'मेरा यह भेद कोई नहीं जानता ।'

विशाल के मुंह से निकल गया, 'किन्तु मुझे भी तो आपने वह भेद कभी नहीं बतलाया ।'

हंसकर राजा ने कहा, 'तुम उस भेद को जान कर क्या करोगी विशाल । इतना ही कह देना पर्याप्त है कि मुझे कोई युद्ध में नहीं मार सकता ।

विशाल ने कहा, 'तो क्या वह भेद मुझे भी नहीं बतलाना चाहते ?'

राजा चुप रहे ।

विशाल ने मुँह लटका लिया ।

राजा ने समझ लिया कि विशाल बुरा मान गई है। वे फीकी मुस्कान के साथ बोले, 'तब क्या बुरा मान गईं विशाल ? यह मेरे जीवन और मृत्यु का प्रश्न है। यदि कभी भूल से भी तुम्हारे मुँह से यह बात निकल गई तो···'

विशाल बीच ही में बोल उठी, 'न-न-न, आप रहने दीजिये। मैं उसे जानने योग्य हूँ भी नहीं। आप अपना भेद अपने ही तक रखिये।'

कहकर विशाल गम्भीर हो गई ।

उसकी ठोढ़ी ऊपर उठाते हुए प्यार से राजा ने कहा, 'तुम तो इतनी जल्दी····'

पति का हाथ हटाते हुए विशाल ने कहा, 'आप मुझे अपने से दूर समझते हैं। मेरे लिये संसार में क्या आपके अतिरिक्त और भी कोई दूसरा है ? मैं नहीं जानती थी कि···'

कहते कहते विशालाक्षी चुप हो गई ।

राजा विद्यासागर थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहे फिर बोले, 'तुम्हें भेद बता देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है विशाल, किन्तु स्त्रियों का स्वभाव है कि उनके पेट में बात पचती नहीं। मैं जानता हूँ कि मेरा अहित तुम्हारा ही अहित होगा किन्तु तुम्हारी भूल से भी तो इसका

परिणाम भयानक हो सकता है।'

विशालाक्षी किंचित स्फुट-स्वर में बोली, 'तब तो सारी नारी-जाति पर महाराज ने चोट की है। क्या मैं जान सकती हूँ कि सारी नारी-जाति.......'

बीच में ही महाराज बोल उठे, मैं तो बड़ा ही स्पष्टवादी हूँ यह तो तुम भली भाँति जानती हो विशाल। नारी के प्रति मेरे जो भाव हैं वे कितने शाश्वत हैं कि उसमें परिवर्तन मान्य नहीं हो सकता।

कुछ तिलमिलाकर विशालाक्षी कहने लगी, 'तो नारी के सम्बन्ध में महाराज के क्या विचार हैं यह मैं आज जान लेना चाहती हूँ। आप क्या समझते हैं नारी को ?'

विद्यासागर किंचित गंभीर होकर बोले, 'नारी स्नेह की वस्तु है तिरस्कार की नहीं। उसका हृदय कोमल है किन्तु उस कोमलता में एक पाषाण छुपा रहता है। नारी सहज ही में अपनी बनाई जा सकती है, किन्तु वह किसी की भी नहीं है। अपने संकल्प में वह मौलिक है। तभी तो मेरा दृढ़ विचार है कि नारी कोमल है। उसमें सरलता से प्रवेश हो सकता है किन्तु उसका प्यार पाषाण से भी अधिक अभेद्य और सुदृढ़ है।'

विशालाक्षी बोल उठी, किन्तु आपके विचारों से मैं सहमत नहीं हूँ। नारी अपने ही दृष्टिकोण से पुरुष को देखती है, और उसकी यही सबसे बड़ी भूल है। पुरुष की अपेक्षा नारी में सहिष्णुता अधिक है। वह सहसाकर्मी नहीं है। जब वह एक बार निश्चय कर लेती है तो उस निश्चय में एक त्याग की भावना आ जाती है।'

मुसकराकर विद्यासागर ने कहा, यही तो नारी के चरित्र की सब से भयानक बात है। दृढ़ विश्वास है कि नारी का प्रेम प्राप्त कर लेने में वही सफल है जो अपने में उसी का पाषाणत्व का सृजन कर लेता है जिसे सृजनहार ने नारी को स्वभावतः दिया है।

कुछ दृढ़ होकर विशालाक्षी ने कहा, 'नारी महान् है, वह पुरुष के लिए बड़ा-सा-बड़ा त्याग करने में पीछे नहीं हटती।'

अब कुछ गंभीर होकर विद्यासागर कहने लगे, 'तुम जो कुछ कह रही हो संभवतः वह ठीक भी हो सकता है किन्तु……'

विशालाक्षी बोल उठी, 'पुरुष का निर्णय क्षणिक किन्तु नारी के निर्णय में स्थायित्व होता है। पुरुष की अपेक्षा नारी में दृढ़ता अधिक है। तभी तो पुरुष की एक साधारण-सी भूल पर नारी को अपना सर्वस्व त्याग देना पड़ता है।'

विद्यासागर ने कहा, 'सुनो विशाल, नारी प्यार की वस्तु है खोज की नहीं। यदि उसे प्यार करना है तो उसके चरित्र के पृष्ठों को मत पढ़ो। उसकी गहराई में जाकर तुम्हें निराशा, वेदना, पीड़ा, घृणा मानसिक संघर्ष एवं तिरस्कार सभी कुछ मिलेगा, मिल सकता है। नारी अपनी है किन्तु वह कब पराई हो जायगी यह अभेद्य है। नारी शत्रु भी है और मित्र भी। वह जब शत्रु हो जाती है तब भय और भयानकतापर्यायवाची हो जाते हैं। नारी अबला है किन्तु वह कब सबला और बला हो जायगी। कनक-कलश की भाँति नारी ऊपर और भीतर कभी एक हो नहीं सकती। उसका जो कुछ सुन्दर है वह तभी तक सुन्दर है जब तक उस सुन्दरता के साथ हम खिलवाड़ नहीं करते। नारी अपनी है किन्तु जब किसी और की हो जाती है तो फिर कभी अपनी नहीं हो सकती। उसका प्रत्येक कार्य एक रहस्य है और वह रहस्य उसका अपना है। वह किसी पुरुष पर या मिटकर अपने प्राण दे सकती है किन्तु उसका रहस्य अपनी परिभाषा नहीं बदल सकता। वह जिस पर मरती है उसे मार भी सकती है। उसकी गोपनीयता ही उसका चरित्र है। यदि नारी को प्यार करना है, उससे सुख पाना है तो उसके चरित्र की ओर मत देखो।'

विशालाक्षी चोट से तिलमिला गई थी। बोली, 'तब नारी इतनी बुरी है आपकी दृष्टि में?'

राजा विद्यासागर भावुकता में कहते गए, नारी स्वयं एक संसार है नारी एक दुर्भेद्य पर्वत है। उसके वचनामृत का पान करो, उसके प्रेम में हिलोरें लो किन्तु वह क्या है, क्या थी और क्या हो सकती है उस पर अपने मनोविज्ञान को मत भटकने दो। नारी माँ है, प्रेमिका है, पत्नि है और पूजने की वस्तु है किन्तु वह मनोरंजन की वस्तु है, खेलने की वस्तु है और जीवन की वह सहचरी है जो........'

कहते-कहते राजा चुप हो गए।

विशालाक्षी अपने क्रोध को दबाती हुई बोली, 'तब नारी बुरी है या अच्छी ?'

मुसकराकर विद्यासागर ने कहा, 'न बुरी न अच्छी। उदाहरणार्थ तुम्हारी गणना अच्छी नारियों में है।'

क्रोध की मुद्रा में विशालाक्षी बोली, 'अब यह लल्लो-चप्पो रहने दीजिए।'

उसके क्रोध पर प्रेम से हाथ रखते हुए राजा ने कहा, 'यह सब तो मैं भावुकता में आकर कह गया। सुनयना जैसी नारियाँ क्या पूजनीय नहीं हैं ?'

विशालाक्षी पर दूसरी चोट पड़ी।

उसे प्रभावित जानकर राजा विद्यासागर ने कहा, 'अब तुम नाराज हो गई हो तो सुनो। मैं तुम्हें वह भेद बतलाता हूँ.......'

बनावटी ढंग से विशालाक्षी बोल उठी, 'नहीं-नहीं। मैं आपका कोई भेद नहीं जानना चाहती। मैं नहीं सुनना चाहती।'

राजा विद्यासागर थोड़ी देर चुप रहे, फिर उन्होंने धीरे-धीरे विस्तृत रूप से अपने जीवन और उसकी सुरक्षा का सारा भेद नारी—विशालाक्षी को बतला दिया।

विशालाक्षी नेत्र फाड़कर पति के मुँह की ओर देखती रह गई।

इकत्तीस

दो दिन से युद्ध बन्द था।

शिविर में बैठे हुए राजीव अपने मित्रों से इस सम्बन्ध में परामर्श कर रहे थे।

हरिदास ने कहा, 'यदि शत्रु आक्रमण नहीं कर रहा है तो फिर हमको ही आक्रमण कर देना चाहिए।'

कंठवर्द्धन ने कहा 'राजधानी में इस प्रकार का भयानक सन्नाटा देख कर मुझे आश्चर्य भी हो रहा है और भय भी। पुत्र-शोक से विह्वल होकर राजा विद्यासागर किसी प्रण की संधि का तो प्रयास नहीं कर रहे हैं?'

दयासागर बोल उठे, 'आप लोग इस भ्रम में न रहें। अभी आप उसकी शक्ति को जानते नहीं। वह बड़ा मायावी है। कुछ माया-जाल ही रच रहा होगा।'

निशानाथ ने कहा, 'हम उसके माया-जाल से भयभीत होने वाले नहीं हैं, फिर भी हमको प्रत्येक प्रकार के परिणाम से सचेत रहना चाहिए।'

पदवर्द्धन कहने लगे, 'हमारे सैनिक भी युद्ध को भूल कर विश्राम कर रहे हैं। उन्हें सचेत रहना ही चाहिए।'

तभी एक गुप्तचर ने आकर सूचना दी कि, 'शत्रु की सेना में किसी प्रकार की तैयारी या तत्परता दृष्टिगोचर नहीं हो रही है।'

हरिदास ने जोश में खड़े होते हुए कहा, 'यही उत्तम अवसर है जब हम शत्रु पर आक्रमण कर सकते हैं। हमको तो शीघ्र विजय प्राप्त करके पुनीताजी को बंधन से स्वतन्त्र करना है। हम देर कैसे कर सकते हैं ?'

निशानाथ ने कहा, 'हरिदास जी ठीक कह रहे हैं। हम शत्रु को समय नहीं दे सकते। शीघ्र ही राज्य पर हमारा अधिकार हो जाना चाहिए।'

संध्या का समय था। हरिदास ने कहा, 'यदि आज्ञा हो तो मैं राजधानी का एक चक्कर लगाऊँ? शत्रु का सारा भेद मिल जायगा।

राजीव ने धीरे से कहा, 'कल सवेरे ही आक्रमण होने के मैं पक्ष में हूँ। किन्तु······यह कोलाहल कैसा ? शत्रु की सेना तो नहीं आगई ?'

सचमुच बाहर कोलाहल हो रहा था। सभी शिविर के बाहर निकल आए। सामने से शत्रु की विशाल सेना चली आ रही थी।

हरिदास ने कहा, 'गजब हो गया। हमारे सैनिक तो तैयार नहीं हैं। यह तो धोखा·······'

कंठवर्द्धन ने कहा, 'आप घबड़ाइए नहीं हरिदास जी। युद्ध और प्रेम में सभी कुछ क्षम्य है। जल्दी जाकर सेना तैयार कीजिए।'

जल्दी से सेनायें तैयार होने लगीं। किन्तु शत्रु की सेनायें सिर पर आ गई थी। राजीव, निशानाथ, कंठवर्द्धव, पदवर्द्धन, हरिदास और सुकंठ सभी बुरी तरह से घिर गए। तुमुल युद्ध होने लगा।'

यद्यपि सैनिकों ने जल्दी ही अपने को तैयार किया और युद्ध में पिल पड़े, किन्तु फिर भी शत्रु सेना तैयार और अधिक संख्या में थी। राजीव के सैनिक बुरी तरह से कटने लगे।

अभी सैनिक संभल भी न पाए थे कि दूसरी ओर से रुद्रसागर ए
दूसरी सेना लेकर आ पहुंचा। राजीव और उसकी सेना बुरी तरह
घिर गए। अँधेरे में शत्रु की शक्ति का कुछ अंदाज भी न लग
रहा था।

राजीव ने निशानाथ से कहा, 'मैं पश्चिम का मोरचा जाक
संभालता हूँ। तुम इस सेना को रोको।'

घनघोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में अधिकांश सैनिक राजीव के
काम आये। रुद्रसागर ने चारों ओर से उनकी सेना को बुरी तरह
घेर लिया था। रात भर युद्ध चलता रहा। सबेरे शत्रु-सेना ने कु
दूर जाकर घेरा डाल दिया। युद्ध में विराम लग गया था।

उदास भाव से हरिदास ने कहा, 'हम बुरी तरह से घिर गये हैं
हमारी सेना के आधे से अधिक सैनिक मर चुके हैं। इस विपत्ति
कैसे छुटकारा हो? इस समय युद्ध बंद कर देने में भी शत्रु की को
चाल मालूम पड़ती है।

गंभीर वाणी में निशानाथ ने कहा, 'ऐसा प्रतीत होता है ि
अपनी इस गलती के कारण ही हम यह युद्ध हार रहे हैं। हमक
बहुत सोच-समझ कर पग उठाना होगा।

कंठवर्द्धन ने कहा, 'तो अब करना क्या होगा। इस तरह त
बहुत शीघ्र हम सब लोग मारे जायँगे। हमने पहिले आक्रमण न क
के बड़ी भारी भूल की है।'

सभी विचलित थे। अन्त में राजीव ने खड़े होकर कहा, 'चिन्त
की कोई बात नहीं। मैं पाँच हजार सैनिक लेकर अभी रुद्रसागर प
आक्रमण करने जा रहा हूँ। यह युद्ध ही हमारे भविष्य का निर्ण
करेगा। रुद्रसागर के गिरते ही यह सारी शत्रु-सेना भाग खड़
होगी।'

हरिदास ने कहा, 'यदि उचित समझें तो मुझे भी साथ ले लें
मैं आपके पास ही रह कर युद्ध करूँगा।'

मुसकुराकर राजीव ने कहा, 'यह तो मेरे लिये बड़ी प्रसन्नता की बात होगी।'

राजीव के नेतृत्व में युद्ध के लिये सैनिक तैयार होने लगे। राजीव की गंभरिता और तत्परता देख कर सभी को ढाढ़स बंधा।

निशानाथ को संबोधित कर के राजीव ने कहा, 'तुम कुछ सेना लेकर शत्रु पर दूसरी ओर से आक्रमण कर दो। तुम्हारे साथ कंठवर्द्धन रहेंगे। आज शत्रु को अच्छा-खासा पाठ पढ़ाना होगा।'

राजीव की योजना और तैयारी से सैनिकों का उत्साह बढ़ने लगा। रात्रि की दुर्घटना से सभी क्रुद्ध थे। उनमें प्रतिहिंसा की भावना आ गई थी।

रूद्रसागर की ओर राजीव सेना लेकर बढ़े। दूसरी ओर कुछ सैनिकों के साथ निशानाथ बढ़ गये। बचे-कुचे सैनिकों के साथ पदवर्द्धन ने तीसरी ओर प्रस्थान कर दिया। शत्रु-सेना पर एकाएक तीन ओर से आक्रमण हो गया।

युद्ध फिर छिड़ गया।

राजीव युद्ध करते हुये रूद्रसागर के सामने जा पहुँचे। वे तो रूद्रसागर का वध करने का संकल्प लेकर ही आगे बढ़े थे। दोनों बुरी तरह से भिड़ गये।

रूद्रसागर को ललकारते हुये राजीव ने कहा, 'आज मैं तुझसे ही युद्ध करने आया हूँ इधर बढ़कर आगे आ।'

मुसकराते हुये रूद्रसागर ने कहा, 'तुम अभी बच्चे हो। अभी युद्ध करना सीखो।'

अत्यंत क्रुद्ध होकर राजीव ने कस कर तलवार का वार किया। रूद्रसागर की बांई भुजा कट कर दूर जा गिरी। राजीव की सेना हर्षध्वनि कर उठी।

किन्तु रूद्रसागर पर मानो उसका कोई प्रभाव ही न पड़ा। उसने दाहिने हाथ से भरपूर वार किया। तलवार राजीव के कंधे ही पर

पड़ती किन्तु बीच में उसे हरिदास ने अपनी तलवार पर रोका। रुद्रसागर की तलवार टूट गई।

अपनी तलवार उसे देते हुये हरिदास ने कहा, 'ले तलवार। हम निहत्थों से नहीं लड़ा करते।'

और हरिदास दूसरी तलवार लेने चला गया।

रुद्रसागर खिसिया गया था। वह तलवार लेकर राजीव पर पिल पड़ा। दोनों में घंटे भर तक जय का युद्ध हुआ। रुद्रसागर थक चला था। एक हाथ से कहाँ तक लड़ता।

उसने कौतुक करना चाहा। अवसर पाकर उसने राजीव के दाहिने पैर पर वार किया। जैसे ही वह झुका वैसे ही राजीव ने कस कर उसके एक लात मारी। रुद्रसागर लडखड़ाने लगा। अवसर पाकर राजीव ने तलवार से उसका सिर काट लिया।

युद्ध-क्षेत्र में रुद्रसागर के गिरते ही भगदड पड़ गई। रुद्रसागर की सेनायें भाग चलीं।

उसकी मृत्यु का समाचार पाकर निशानाथ ने भी शत्रु-दल का सफाया करना प्रारम्भ किया। शत्रु-दल के बहुत से सैनिक मारे गये। शेष भाग खड़े हुये। संध्या तक शत्रु-सेना से सारा मैदान खाली हो गया। विजय पताका फहराते हुये राजीव और निशानाथ शिविर में पहुँच गये।

शत्रु की यह करारी हार थी। इतनी बड़ी विजय के पश्चात् अब सैनिकों को विश्राम मिला।

हरिदास ने कहा, 'हम अब विश्राम नहीं करना चाहते। मेरी राय तो यह है कि हम आज रात को ही सारे सैन्य-दल के साथ राजधानी को घेर लें।'

कंठवर्द्धन ने कहा, 'हरिदासजी का कहना ठीक ही है। हम शत्रु को तैयारी का अवसर ही न दें। हमारी विजय निश्चित है।'

कुछ सोच कर राजीव ने कहा. 'योजना तो सुन्दर है किन्तु...'

निशानाथ बोल उठे, 'आप विश्राम करें दादा। अपनी सेना के साथ हरिदासजी भी सुरक्षा के लिये यहीं रहेंगे। मैं अभी सेना लेकर राजमहल को जाकर घेरता हूँ। मैं विश्राम नहीं कर सकता।'

कंटवर्द्धन ने कहा, 'मैं भी निशानाथ के साथ ही जाऊंगा। तब तक विद्यासागर से दो-दो हाथ करूँगा।'

कुछ सोच कर राजीव ने कहा, 'ठीक है। किन्तु सवेरे निशानाथ लौट कर मुझे युद्धफल से सूचित करेंगे। कल मैं भी वहाँ पहुँच जाऊंगा। इस युद्ध का अब शीघ्र ही निर्णय होना है।

आध घंटे के भीतर ही निशानाथ एक बहुत बडी सेना के साथ राजमहल की ओर चल दिये।

आधीरात के समय जब राजा विद्यासागर की नींद टूटी तो वह राजमहल के चारों ओर शत्रु-सेना का शंख नाद सुन कर चकित रह गया।

बत्तीस

आज युद्ध का आठवां दिन था।

लड़ते-लड़ते दोनों दल थक चले थे, 'किन्तु फिर भी किनारा नजर न आ रहा था। राजा विद्यासागर का अभूतपूर्व शौर्य देख कर लोग चकित रह गये। राजीव की सेना दिन पर दिन घटती जा रही थी। राजा विद्यासागर से राजीव का कई बार भयानक युद्ध हुआ किन्तु उसका कुछ भी परिणाम न निकल सका। उसका शरीर इतना दृढ़ था कि उस पर तलवारें टूट जाती थीं, 'किन्तु कोई उसका कुछ बिगाड़ न पाता था। एक बार राजीव ने उसकी गर्दन को लक्ष्य कर के तलवार चलाई किन्तु गर्दन से टकरा कर तलवार के दो टुकड़े हो गये। विद्यासागर के किसी प्रकार की खरोंच भी न आई। राजीव चकित से रह गये। वह योद्धाओं के बीच घुस कर अन्धाधुंध युद्ध करता और लाशों से युद्ध-भूमि को पाट देता किन्तु उसका कोई कुछ बिगाड़ न पाता।'

धीरे-धीरे करके राजीव की सेना समाप्त हो रही थी। चुने-चुने योद्धा ही अपने कौशल से अपने को बचाये हुये थे। इसके विपरीत विद्यासागर की सेना अब भी असंख्य थी।

आज सभी लोग बहुत उदास थे। जिस समय संध्या को ये लोग

शिविर पर लौटे तो अत्यंत ही निराश होकर निशानाथ ने कहा, 'हम अब पूर्णरूपेण पराजित हैं। मुझे पूर्ण विश्ववास हो गया है कि संसार में विद्यासागर को कोई हरा नहीं सकता। वह एक जादूगर है।'

हरिदास बोल उठा, 'सुना है कि उसे चंडिकाजी ने अजेयता का वरदान दिया है। वह अमर है।'

कंठवर्द्धन ने कहा, 'उसका युद्ध कौशल कुछ विचित्र ही है। उसके शरीर पर किसी प्रकार के शस्त्र का प्रभाव ही नहीं होता।

दयासागर तो बहुत ही दुखी था। उसे अपने सिर पर मृत्यु खेलती नजर आ रही थी। वह चुप रहा।

अब राजीव ने कहना प्रारम्भ किया, 'सचमुच विद्यासागर की वीरता आश्चर्य-जनक है। उसका शरीर इस्पात का बना प्रतीत होता है। ऐसी परिस्थिति में हमको विचार करना है कि यह युद्ध किस प्रकार आगे बढ़ाया जाय।'

निशानाथ ने कहा, ,मुझे पूर्ण विश्वास है कि हम इस युद्ध को नहीं जीत सकते। इसमे यह अच्छा है कि हम संधि का प्रस्ताव करें।

हरिदास ने कहा, 'किन्तु अब वह क्यों संधि करेगा? वह जान गया है कि अब हम लोग उसके आगे दो दिन से अधिक नहीं टिक सकते।'

कंठवर्द्धन ने कहा, 'हरिदासजी ठीक ही कह रहे हैं। वह अभिमानी राजा हमारी क्यों सुनने लगा? वह तो हम लोगों को समाप्त कर देना चाहता है।

निशानाथ ने एक निश्वास ली और बोले' 'मैं इसे कायरता समझता हूँ। युद्ध-भूमि में लड़ कर मर जाना ही हमारे लिये किर्ति-कारक होगा। हम भाग कर किसी की शरण में नहीं जा सकते। कल मै अकेला ही उस अहंकारी राजा से युद्ध करूँगा। या तो उसे समाप्त करूँगा और नहीं तो स्वयं युद्ध-क्षेत्र में सदा के लिये सो जाऊँगा।

सब लोग चुप रहे।

थोड़ी देर बाद स्तब्धता भंग करते हुये राजीव ने कहा, 'आप लोग निराश न हों। इस युद्ध का प्रारम्भ मैंने किया है और मैं ही इसका अंत करूँगा। कल मैं राजा विद्यासागर से निर्णयात्मर युद्ध करूँगा। मारूँगा या स्वयं मर जाऊंगा। यदि मैं उसे मारने में सफल हो गया तो विजय निश्चितरूप से तुम्हारी है और यदि मैं युद्ध-भूमि में सो गया तो फिर आगे युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं है। आप लोग युद्ध बंद कर के किसी अन्य स्थान पर रहने चले जायं।

कहते-कहते राजीव के नेत्र सजल हो गये।

किसी ने कुछ न कहा। सब चुप रहे।

× × ×

गर्व से सीना तानते हुये राजा विद्यासागर ने कहा, 'देखा विशाल अंत में मेरी ही जीत हुई न? वह दिन दूर नहीं है जब इन दोनों भाइयों के सिर युद्ध-भूमि में लोटते होंगे और हमारे उस कायर भाई का सिर राजमहल के द्वार पर टंगा होगा।'

विशाल मन ही मन काँप उठी। ऊपरी मन से बोली, 'संसार में आपकी समता कौन कर सकता है?

राजा स्फुट-स्वर में बोला, 'दो दिन के भीतर ही युद्ध समाप्त हुआ समझो। मैं तब निष्कंटक राज्य करूँगा। इस विश्वासघाती प्रजा से कस-कस कर बदला लूंगा। हजारों को कुत्तों की मौत मारूँगा। हजारों अट्टालिकायें भूमिसरत करके यहाँ की प्रजा से पाई-पाई का बदला चुका लूंगा।

विशाल समझ गई थी कि निर्दयी व्यक्ति सभी कुछ कर सकता है। वह डरते-डरते बोली, 'और पुनीता का क्या होगा?'

राजा विद्यासागर अट्टहास कर उठा। बोला, 'मैं उसकी रूप-छटा पर मुग्ध हूँ। मैं उसे रानी बनाकर रक्खूंगा। जब उस तृप्ति की तुष्टि हो जायगी तब उसे किसी सेवक को दान कर दूंगा।'

विशालाक्षी क्रोध से जल-भुन गई। नारी का ऐसा अपमान!

प्रसन्न मुद्रा में बोली, 'ठीक है। महाराज जिस तरह प्रसन्न रहें वही मुझे अभीष्ठ है।'

तानाशाही की भाँति राजा विद्यासागर ने कहा, 'जीवन के इस सब बड़े खतरे को मैंने मसलकर समाप्त कर दिया है विशाल। आज संसार में कौन मेरा मुकाबला कर सकता है। मैं जो चाहूँ कर सकता हूँ।'

राजा की इन बातों से विशालाक्षी के हृदय में उसके प्रति घृणा ही बढ़ती जा रही थी। वह धीरे से कक्ष के बाहर हो गई।

संध्या का समय था। विशालाक्षी अपने कक्ष में जाकर चुपचाप लेट गई। आज उसका चित्त बहुत खराब था। उसके नेत्रों के आगे कभी दयासागर का चित्र नाच उटता था और कभी पुनीता का। कितना नृशंस और कठोर है यह व्यक्ति? पुनीता को रानी बनाने के बाद उसकी क्या दशा हो जायगी इस राजमहल में? छि:, मेरे सामने ऐसा कहते उसे लज्जा भी नहीं आई? कितना दानव, निर्भय और घृणित व्यक्ति है यह? अब····क्या होगा—बेचारा दयासागर···

दयासागर की मृत्यु की कल्पना ही से वह काँप कर उठ बैठी। नहीं सहन कर सकेगी वह यह दृश्य! किन्तु इस व्यक्ति से दया की आशा····नहीं—वह पशु है। वह नारी को एक क्रीड़ा की सामग्री समझता है। नीच, पापी···किन्तु उपाय क्या है···? तब···तब इसके पूर्व मैं मरूंगी—मैं आत्महत्या करूंगी। क्या करूंगी इस दुष्ट के साथ जीकर! ओह···

विशालाक्षी उन्मत्तों की भाँति राजमहल से निकल कर उपवन में आ गई। वह रात्रि के अंधकार में कुंजों का सहारा लेती हुई निपट निराले में पहुँच गई। घोर निस्तब्धता, बीहड़ अंधकार—केवल प्रकाश का क्षीण आभास मिल रहा था। निकट ही सरोवर था। उसके किनारे पत्थर की छोटी-छोटी कुरसियाँ बनी हुई थीं। विशालाक्षी एक कुर्सी पर बैठ गई।

मौसम सुहावना था। मन्द वायु चल रही थी। भीनी-भीनी सुगन्ध मन को मस्त कर रही थी।

विशालाक्षी का मन बहल न सका। उसका मन हुआ कि वह इसी सरोवर में आत्महत्या कर ले। वह उठी और धीरे-धीरे जल में उतरने लगी।

'कौन है ?' एक अन्य कुर्सी पर बैठे हुए किसी व्यक्ति के मुँह से निकला।'

विशालाक्षी के मन में आया कि वह सरोवर में गोता लगाकर अपने कष्टों से छुटकारा पा जाए, किन्तु उसके मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ। आखिर वह कौन है ? इस राजकीय उपवन में वह किसकी आज्ञा से आया ?

विशाल पानी से निकलकर किनारे पर आ गई। उस व्यक्ति की छाया भी विशाल के निकट आकर बोली, 'तुम कौन हो ? क्या आत्म-हत्या करने आई हो ?'

विशाल को क्रोध आया। वह यहाँ की महारानी है। उससे प्रश्न करने वाला यह कौन ?

विशाल ने अकड़कर कहा, 'तुम कौन हो जी ? इस राजकीय उपवन में तुम किसकी आज्ञा से आए हो ? जल्द उत्तर दो ?'

'कौन, विशाल ?' स्नेह-सिक्त वाणी में उस छाया ने कहा।

उस छाया ने आगे बढ़कर विशाल को आलिंगनपाश में बाँ लिया।

'ओह तुम हो। इस समय ? यहाँ' विशाल के मुँह से निकला।

विशाल से अपने को मुक्त करता हुआ वह बोला, 'अंतिम बा तुमसे ही मिलने आया था विशाल। गुप्त रूप से राजमहल में लगभ घंटे-भर तक छिपा रहा, किन्तु तुम कदाचित् उसके कक्ष में थीं। अ में अन्तिम मिलन की आशा भी छोड़कर यहाँ आकर बैठ गया। सो रहा था कुछ और अधिक सन्नाटा हो जाय तो यहाँ से निकल भागूँ

विशालाक्षी रो रही थी। धीमे स्वर में वह बोली, 'मैं भी मरना चाहती हूँ दया। मैं जीकर क्या करूंगी।

उसका कंठ अवरुद्ध हो गया, वह दयासागर के वक्षस्थल पर माथा टिका कर रो पड़ी।

दयासागर कहने लगा, 'अब कोई उपाय नहीं है विशाल। कल युद्ध का अन्तिम निर्णय हो जायगा। हमारी विजय की कोई आशा नहीं। अब केवल प्राण ही देना है। इस अहंकारी दानव को अवश्य ही चंडिका का वरदान प्राप्त है। उस पर किसी भी अस्त्र-शस्त्र का प्रभाव ही नहीं होता।

विशाल के मस्तिष्क में एक बिजली-सी दौड़ गई। वह अब तक यह सब क्यों भूली हुई थी? यदि वह चाहे तो दयासागर को युद्ध में विजयी बना सकती है। वह क्यों न····

उसे चुप देखकर दयासागर ने कहा, 'समय कम है विशाल। हम क्यों न दो घड़ी के लिए अपना मन बहला लें।

विशालाक्षी मन में कुछ निर्णय ले रही थी। वह फिर भी चुप रही।

दयासागर प्रेम से उसका हाथ अपने हाथ में लेता हुआ बोला, 'यह जन्म ही व्यर्थ हुआ विशाल। आज हमारे मिलन का अंतिम दिन है। यदि ईश्वर ने चाहा तो अगले जन्म····'

कहते-कहते दयासागर का कंठ अवरुद्ध हो गया।

विशालाक्षी अब तक कदाचित् कुछ निर्णय ले चुकी थी। बोली, 'नहीं, हम इसी जन्म में मिलेंगे। दयासागर मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। मैं तुम्हारे लिए सब कुछ कर सकती हूँ। नारी पुरुष की खिलवाड़ अवश्य है किन्तु वह जब अबला से सबला हो उठती है तो वह फिर पुरुष के लिए बला बन जाती है। मैं तुम्हारे लिए अब बला ही बनूंगी।

अंधेरे में यदि कोई देख सकता तो क्रोध से तमतमाया हुआ विशालाक्षी का चेहरा देख सकता था।

वह फिर कह पड़ी, 'मैं ही उसकी मृत्यु का कारण बनूँगी किन्तु उसे मरने नहीं दूँगी जिससे मैं प्रेम करती हूँ।'

दयासागर किंचित आश्चर्य के साथ बोला, 'क्या यह संभव है ? क्या तुम उसकी हत्या का प्रस्ताव कर रही हो ? बोलो विशाल।'

दृढ़ स्वर में विशाल के मुँह से निकला, 'हां, उसे मरना ही पड़ेगा।

दयासागर वह उपाय सुनना चाहता था। वह प्रतीक्षा करने लगा।

विशाल कहने लगी, 'उसके पास एक विचित्र प्रकार का बख्तर है। उस लोहे के बख्तर को वह युद्ध करने के समय पहन लेता है। इससे उसका सिर, गर्दन, सीना, पीठ, चेहरा सभी सुरक्षित रहते हैं। किसी प्रकार की चोट उस पर असर नहीं करती। यही उसके जीवन का रहस्य है।'

'फिर ?' दयासागर के मुँह से निकला।

विशाल कहने लगी, 'उस बख्तर को यदि हस्तगत किया जा सके तो···'

दयासागर कह पड़ा, 'किन्तु यह कार्य भी तो बड़ा कठिन है।'

विशाल कहती गई, 'वह बख्तर एक लोहे के संदूक में बन्द रहता है जिसकी कुँजी उसके गले में लटकती रहती है। यदि किसी प्रकार वह कुँजी हस्तगत की जा सके तो·····'

कुछ परेशान-सा होकर दयासागर बोला, 'किन्तु यह कार्य असंभव सा प्रतीत होता है।'

क्षण-भर रुककर विशाल बोली, 'यह कार्य अवश्य ही होगा। अब समय नहीं है। आज ही रात में वह कार्य सम्पन्न होना चाहिए। अच्छी बात है, तुम मेरे साथ आओ। नारी क्या नहीं कर सकती। वह अपनी है किन्तु वह जब पराई हो जाती है तो फिर सिंह से अधिक खूंखार हो जाती है। उसका हृदय सुकोमल है, किन्तु उस सुकोमलता में एक पाषाण छिपा रहता है। मैं अब पाषाण हूँ।'

तेतीस

अत्यन्त प्रसन्नता के स्वर में विशालाक्षी ने कहा, 'आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ महाराज। इस विजय के उपलक्ष्य में मुझे भी तो कुछ मिलना चाहिए।'

मुसकराकर राजा विद्यासागर ने कहा, 'तुम क्या चाहती हो ? मैं तुम्हें क्या नहीं दे सकता ? जो चाहो माँग लो।'

अटूट स्नेह प्रदर्शित करते हुए विशालाक्षी ने कहा, 'मुझे केवल आपका असीम प्यार चाहिए। मुझे आर्शीवाद दीजिए कि आपके ही असीम प्यार में डूबी हुई मैं अपने को आपकी सेवा के उपयुक्त बना सकूं। मेरा जीवन आपके ही चर्णों में उत्सर्ग हो जाय।'

महारानी को भुज-पाश में बांधता हुआ विद्यासागर बोला, 'तुम मुझे बहुत प्रिय हो विशाल। मैं जीवन में तुम्हारी सभी इच्छायें पूरी करूँगा। तुम सदा इस राज्य की पटरानी तथा मेरे हृदय की अधीश्वरी रहोगी।'

विशाल उटकर अलमारी के पास गई और सुन्दर-सी काँच की सुराही उठा लाई। मदिरा को स्वर्ण पात्र में भर कर उसने पति की ओर बढ़ा दिया।

प्रसन्न होकर विद्यासागर बोला, 'अपने होटों से इसे लगा तो लो

विशाल। आज हम दोनों जी भर कर पियेंगे और संसार भूल जायेंगे
कल मुझे महायुद्ध करके विजय प्राप्त करना है। आज की रात्रि हम
लिए प्रमोद की रात्रि होगी। आओ आज हम तुम मदिरा
अपने को भूल जायँ।

विशाल ने पात्र ओठों से लगाकर पति की ओर बढ़ा दिया
विद्यासागर ने पात्र खाली कर दिया। विशाल ने दूसरा प्याला भर
तीसरा भरा, चौथा भरा—विद्यासागर खाली करता चला गया।

अब वह नशे में मदहोश था। विशाल को हृदय से लगाकर बोल
'तुम कितनी सुन्दर हो प्रिये! एक····और'

विशाल ने उसे पिलाकर सुराही रिक्त कर दी। उसने दो-च
घूँट ही लिए थे।

वह पति के पास आकर लेट गई। तुष्टि प्राप्त करते ही विद्
सागर अचेत सा हो गया। अब वह दूसरे ही संसार में विचर र
था।

विशाल धीरे से उठी और उसके शरीर से वस्त्र उतारकर सोने
वस्त्र पहिनाने लगी। इस बीच उसने अनुभव कर लिया कि
पूर्णरूपेण अचेत है। उसने वस्त्र बदलते समय ही चुपचाप उसके
से वह माला उतार ली जिसमें एक लंबी सी ताली लटक रही थी।

विशाल ने धीरे से उसे एक चादर उढ़ा दी तथा कक्ष से ब
हो गई।

अपने कक्ष में पहुँचकर वह बोली, 'काम हो गया है जल्दी
बाहर चलो।'

कक्ष में दयासागर बैठा हुआ था। वह धीरे से बोला, 'ताली मि
गई।'

'हाँ' कहकर वह कक्ष के बाहर आ गई। पीछे दयासागर था।

उसने फिर उसी कक्ष में प्रवेश किया जिसमें विद्यासागर सो र
था। क्षीण प्रकाश में दोनों ने कक्ष को एक नजर से देखा।

पास में टंगी हुई तलवार को दयासागर को देते हुए फुसफुसा कर विशाल ने कहा, 'यदि आपत्ति पड़ी तो इसका भी प्रयोग किया जायगा।'

दयासागर का हृदय कांप उठा।

जिस ओर विद्यासागर सो रहा था उसी ओर जरा हटकर एक लोहे का संदूक रक्खा हुआ था। विशाल ने उसे ताली से खोल दिया। उसमें कपड़े में लिपटी हुई एक भारी सी वस्तु रक्खी हुई थी। विशाल ने दयासागर को संकेत किया। दयासागर ने उसे उठा लिया। दोनों कक्ष के बाहर हो गये।

बरामदे में पहुँचकर विशाल ने धीरे से कहा, 'इसे अभी ले जाकर उसी तालाब में धीरे से डाल दो। मैं यहीं हूँ। मेरे कक्ष में आ जाना।

चीज भारी थी, किन्तु दयासागर उसे कंधे पर लादकर राजमहल से बाहर हो गया।

विशाल ने संदूक बन्द कर दिया और ताली फिर विद्यासागर के गले में यथावत् पहुँचा दी। विद्यासागर अब भी पूर्णरूपेण अचेत ही था।

काम समाप्त करने के पश्चात् अब विशालाक्षी को भय लग रहा था। वह सोचने लगी। 'कल क्या होगा? जब संदूक खोलने पर यह बख्तर नहीं मिलेगा तो कितना बड़ा कोहराम मच जायगा? न जाने किसकी क्या दशा हो? न जाने किस-किसको मौत के घाट उतार दिया जायगा? उँह इससे मुझे क्या?'

वह बेचैनी के साथ कक्ष में टहलने लगी। वह दयासागर की बुरी तरह से प्रतीक्षा कर रही थी। उसे देर क्यों लगी? कोई पहरेदार तो नहीं मिल गया?

बरामदे में आकर ज्योंही वह अपने कक्ष में जाने लगी उसने आहट पाकर समझ लिया कि दयासागर आ गया है।

सचमुच वह दयासागर था। उससे लिपटकर विशाल बोली, '
अपना काम कर लिया है अब शेष कार्य को पूरा करना तुम्हारा क
है। रात अब दो घड़ी और शेष रह गई। तुम फौरन यहां से बाहर
जाओ प्यारे। किन्तु हाँ, सवेरे तड़के ही तुम्हारा राजमहल पर आक्र
मण हो जाना अनिवार्य है। इस दुष्ट को साँस लेने का भी अवसर
मिलना चाहिए, नहीं तो यह इस बख्तर के लिए कोहराम मचा देग
संभव है मुझ पर ही संदेह कर बैठे। अच्छा अब तुम जाओ।

दयासागर ने प्रसन्न होकर उसके कपोलों पर प्रेम-चिन्ह अंकि
कर दिया और पैर बढ़ाता हुआ उस राजमहल से बाहर हो गया।

उस समय भी राजमहल की दुनियां बेखबर सो रही थी।

विशालाक्षी फिर उसी कक्ष में आ गई जिसमें विद्यासागर सो र
था। उसने अलमारी से मदिरा की सुराही निकाली और ढोकने लगी
उसने छककर पी। नींद और नशे से उसकी पलकें झुकने लगीं।

वह पति की बगल में जाकर चुपचाप सो गई। उस समय
रात्रि एक घड़ी से अधिक शेष थी।

*

चौंतीस

राजीव के शिविर में आज प्राण आ गये थे।

दयासागर से सारी कथा सुन कर राजीव ने कहा—'अब सचमुच सवेरे ही हमारा अभियान होना चाहिए। इस युद्ध की विजय का सारा श्रेय तुम्हीं को प्राप्त होगा दयासागर।

धीरे-धीरे यह बात सभी को मालूम हो गई। प्रसन्न होकर निशानाथ ने कहा, 'आज मैं उस दुष्ट के दांत तोड़ूंगा। मुझे तो बड़ा आश्चर्य था कि क्यों हम लोगों का सारा श्रम व्यर्थ जा रहा है।

हरिदास ने कहा, 'कल युद्ध का दसवां दिन है। कल ही इसका अंत भी होना चाहिए।

तलवार पर हाथ रखते हुए राजीव ने कहा, 'मैं कल ही उस विद्यासागर के वध की प्रतिज्ञा करता हूं। कल उसे संसार में कोई न बचा सकेगा। हरिदास, जाकर सैनिकों को तैयार करो। एक घंटे में राजमहल को घेर लेना होगा।

यद्यपि सेना के नाम पर बहुत कम सैनिक बच रहे थे, किन्तु आज उनमें उत्साह था। आध घंटे के अन्दर ही सेना सहित सारे योद्धा राज-महल की ओर चल दिए। सेना का उत्साह देखकर मार्ग से बहुत से नागरिक भी सम्मिलित होते चले गए।

सवेरे ही विद्यासागर की नींद टूटी। विशालाक्षी उस समय भी बे-खबर सो रही थी। उसे जगा कर विद्यासागर ने कहा—'उठो विशाल, मैं देखता हूँ कि तुम तो मुझसे भी अधिक पी गई हो।

और सचमुच विशालाक्षी अब भी पूरी तरह नशे में चूर थी। उसने लाल-लाल आंखें खोलकर पति की ओर देखा और फिर आँख बन्द करके सो गई।

विद्यासागर सेवकों की सहायता से स्नानागार में निवृत्त होने चला गया।

विशालाक्षी ने फिर आँखें खोलीं। गत रात्रि की सारी घटनाएं उसके मस्तिष्क में घूम रही थीं। अपनी सफलता पर उसे आनन्द आ रहा था। वह उसी प्रकार पड़ी रहना चाहती थी जब तक उसे राजीव की सेना का तुमुल नाद राजमहल के आस-पास सुनाई न पड़ जाए।

घंटे भर बाद विद्यासागर लौटा। उसने अपने सेनापति को बुला भेजा।

विशालाक्षी अब सो न रही थी, केवल आँख बन्द किए हुए लेटी हुई थी। विद्यासागर एक कुर्सी पर बैठ गया।

थोड़ी ही देर में सेनापति ने आकर अभिवादन किया।

राजा विद्यासागर ने कहा, 'आज दोपहर तक आक्रमण की तैयारी हो जाना चाहिए।

अभिवादन करते हुए सेनापति ने कहा, 'अन्नदाता, अब आक्रमण व्यर्थ है। ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग हतोत्साह होकर स्वयं ही भाग रहे हैं।'

क्रोध से पैर पटकते हुए विद्यासागर ने कहा, 'तुम मूर्ख हो। मुझे राजीव, निशानाथ और दयासागर के शीश चाहिए। यह कार्य आज संध्या तक समाप्त हो जाना चाहिए।'

विशालाक्षी उठ कर बैठ गई थी। निकट आकर बोली, 'महाराज ठीक कह रहे हैं। शत्रुओं के शीश पाए बिना हम विजयोत्सव कैसे मना सकेंगे।'

सिर झुका कर सेनापति ने कहा, 'जैसी आज्ञा महारानी की। मैं अभी आक्रमण की तैयारी करता हूँ।

राजा विद्यासागर ने कहा, 'ठीक १२ बजे कूच करना होगा सेनापति जी। मैं सेना का नेतृत्व करूँगा। जाओ।'

सिर झुका कर सेनापति चला गया।

विशालाक्षी घबड़ा रही थी। बख्तर की चोरी का रहस्य खुलते ही यहां का वातावरण न जाने कैसा हो जाएगा। वह तैयार होने अपने कक्ष में चली गई।

उसने स्नान किया, शृंगार किया तथा थोड़ी देर विश्राम के लिए रत्न-जटित पलंग पर लेट गई। उसके कान बाहर लगे हुए थे। ओह, दयासागर ने कितनी देर कर दी ? कहीं खेल बिगड़ तो न जाएगा !

लगभग घंटे भर बाद वह फिर पति के कक्ष में पहुँची। राजा विद्यासागर बड़ी गम्भीर मुद्रा में बैठे हुए थे विशालाक्षी को देखकर उनके चेहरे पर किंचित मुसकराहट आ गई। महारानी का चित्त शान्त हो गया।

कुछ सोच कर राजा ने फिर सेनापति को बुला भेजा।

सेनापति ने आकर अभिवादन किया।

बड़ी ही गम्भीर वाणी में विद्यासागर ने कहा, 'आज का आक्रमण स्थगित रखना होगा। मेरा चित्त कुछ अस्वस्थ मालूम पड़ता है। इसके अतिरिक्त मुझे तुमसे कुछ गोपनीय मंत्रणा करना है। हम निकट के कक्ष में बात करेंगे।'

राजा सेनापति को लेकर बगल के कक्ष में चले गए।

विशालाक्षी ने अपने को अत्यन्त ही अपमानित अनुभव किया। वह खून का घूंट पीकर रह गई।

थोडी ही देर में सेनापति अन्य दो सैनिकों के साथ आए और चुपचाप कुर्सियों पर बैठ गए।

ऊब कर महारानी विशालाक्षी उठ खड़ी हुईं। उन्होंने ज्योंही कक्ष के बाहर जाने का प्रयास किया त्योंही सेनापति ने खड़े होते हुए कहा, 'महारानी क्षमा करें। महाराज ने आपको कक्ष से बाहर न जाने की आज्ञा दी है।'

विशालाक्षी की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वे बोलीं, 'क्या महाराज ने आज्ञा दी है ? क्यों........? मैं अभी उनसे पूछती हूँ।

कह कर वे कक्ष के द्वार की ओर बढ़ीं।

सेनापति ने उनका मार्ग रोकते हुए कहा, 'आप यहीं ठहरें। आप मेरे संरक्षण में हैं। महाराज की आज्ञा से मैं आपको बन्दी बना रहा हूं।'

विशालाक्षी का माथा ठनक गया। वह चुपचाप खड़ी रहीं। सेना-पति ने कहा, 'हम आपका अपमान नहीं करना चाहते महारानी, किन्तु यह राजाज्ञा है।'

विशालाक्षी कुछ कहना चाहती थी कि महाराज ने एकाएक कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा, 'इस विश्वासघातिनी नारी को ले जाकर कारागार में बन्द करो सेनापति ! यह स्त्री नहीं काली नागिन है।

विशालाक्षी ने कहा, 'महाराज.......'

विद्यासागर चिल्ला उठा, 'मैंने क्या इसीलिए अपने जीवन का भेद तुझे बतलाया था दुष्टा ?'

विशालाक्षी रोती हुई बोली, 'मैं निर्दोष हूं महाराज ! मैं इ सम्बन्ध में कुछ नहीं जानती महाराज......

ओंठ चबाता हुआ विद्यासागर बोला, 'तुझे आज ही कुत्तों की मौत मरना पड़ेगा पापिन। इस पति-द्रोह की कहीं क्षमा नहीं। ले जाओ सेनापति इसे कारागार में........'

तभी राजमहल के चारों ओर भीषण कोलाहल मचने लगा। सेना-पति ने चिल्ला कर कहा, 'महाराज, मैं जा रहा हूं। राजधानी की

जनता ने राजमहल पर आक्रमण कर दिया है। नगर में विप्लव हो गया है।'

राजा विद्यासागर घबड़ा गया था। वह सब कुछ भूल गया। सेनापति के साथ वह जल्दी से बाहर की ओर भागा। विशालाक्षी अकेली खड़ी रह गई।

उसने कुछ सोचा, 'मुसकराई और खिड़की पर जाकर राजमहल के बाहर का दृश्य देखने लगी।

राजमहल के बाहर विप्लव मचा हुआ था। लाखों की संख्या में जनता राजमहल को घेरकर उस पर पत्थर बरसा रही थी। जनता के पीछे राजीव की सेना थी। वह राजमहल की ओर तेजी से बढ़ी चली आ रही थी। राज्य की सेना का कहीं पता न था। सेनापति और महाराज राजमहल में ही घिरे हुए थे। किसी क्षण भी राजमहल का फाटक टूट सकता था।

घबड़ा कर सेनापति ने महाराज से कहा, 'बड़ी भयानक स्थिति है। अब संधि-प्रस्ताव के अतिरिक्त कोई चारा नहीं।

चिल्ला कर विद्यासागर ने कहा, 'तू कायर है। मैं युद्ध करूँगा।

सेनापति ने कहा, 'किन्तु सेना कहाँ है महाराज ? बिना आपकी आज्ञा के वे युद्ध प्रारम्भ ही नहीं कर सकतीं। विषम परिस्थिति है।

अभी बात ही हो रही थीं कि एकाएक राजमहल का फाटक खुल गया। सारी भीड़ महल में घुसने लगी। राजमहल के संरक्षक, सैनिक, पहरेदार और अधिकारी बेमौत मरने लगे।

राजा विद्यासागर नंगी तलवार लेकर बाहर निकल पड़े। उन्हें देख कर भीड इधर-उधर भागने लगी।

राजीव ने आगे बढ़कर कहा, 'चल इधर आकर युद्ध कर। आज तू बचकर न जा सकेगा।'

विद्यासागर ने स्फुट-स्वर से कहा, 'क्या यही वीरों की शान है ? यदि धर्म-युद्ध चाहते हो तो मेरी सेनाओं को भी आ जाने दो।

राजीव ने कहा, 'सेनाओं की आवश्यकता ही क्या है ? हम परस्पर निपट सकते हैं। वार बचा।'

राजीव ने कस कर तलवार का वार किया। विद्यासागर बड़े कौशल से उसे बचा गया। दोनों में घमासान युद्ध होने लगा। निशानाथ हरिदास, कंठवर्द्धन एवं दयासागर भी वहीं पहुंच गए।

इधर राजमहल लुट रहा था। जनता ने महारानी विशालाक्षी तथा अन्य स्त्रियों को एक कक्ष में बन्दी बनाकर बन्द कर दिया था। थोड़ी ही देर में सारे राजमहल पर राजीव की सेनाओं का अधिकार हो गया।

राजा विद्यासागर बड़ा ही सुभट योद्धा था। वह लगातार तीन घंटे राजीव से युद्ध करता रहा। इधर राज्य की सेनाएं भी आ गई थीं। चारों ओर भीषण मारकाट मची हुई थी।

युद्ध समाप्त न हो रहा था। अन्त में राजीव ने उग्र रूप धारण किया। उन्होंने अपने को तैयार करने के लिए स्वयं युद्ध बन्द कर दिया। निशानाथ विद्यासागर से आकर भिड़ गए। किन्तु विद्यासागर में न जाने कितना बल था। उसे निशानाथ, हरिदास तथा कंठवर्द्धन ने चारों ओर से घेर लिया। लगभग घंटे-भर युद्ध करने पर भी ये लोग उसका कुछ बिगाड़ न सके।

राजीव ने अन्तिम युद्ध की ठान ली। वे चारों फिर विद्यासागर से युद्ध करने लगे। संध्या का अँधकार आ रहा था और राजीव आज ही युद्ध की समाप्ति चाहते थे। उन्होंने तलवार का सीधा वार उसके कंधे पर किया। विद्यासागर लड़खड़ा गया। इतने ही में राजीव ने दूसरा वार गर्दन पर किया। विद्यासागर का शीश भुट्टा-सा कटकर धरती पर गिर गया।

अब क्या था ? यह समाचार पाते ही उसकी सेनाओं ने हथियार धर दिए।

राजीव की युद्ध में पूर्ण विजय हो गई थी।

पैंतीस

उसी उपवन के कोने में—

एक निर्जन कुटी में पुनीता बैठी हुई शोक-मग्न है।

आज उसकी सेविका नक्षत्रा भी सवेरे से ही गायब थी। संध्या को भी सन्नाटा ही रहा। कोई उधर झाँकने भी न आया। रात भर पुनीता बेचैनी से करवटें बदलती रही।

'इस जीवन से तो मृत्यु ही भली है' एकाएक उसके मुँह से निकल गया।

प्रातः स्नान करके वह बैठी ही थी कि सामने से हरिदास आते दिखलाई दिये। उनका चेहरा उदास था।

उन्होंने आकर पुनीता को प्रणाम किया। उनके हाथ में श्वेत कपड़े से ढकी हुई कोई वस्तु थी। उन्होंने उसे पास ही रख दिया तथा चुपचाप बैठ गये।

पुनीता कुछ घबड़ा गई। उसने साहस करके पूछा 'क्या समाचार है ? आप इतना परेशान क्यों हैं ? युद्ध कब समाप्त होगा ?

कुछ सजल से नयनों के साथ हरिदास ने कहा, 'सब कुछ उजड़ गया। युद्ध में हमारी पराजय हुई। राजीव, निशानाथ एवं सभी योद्धा काम आये।'

पुनीता मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। हरिदास के उपचार से वह होश में आई। दुःखी होकर पुनीता कहने लगी, 'हाय, अब मैं जीवित रह कर क्या करूँगी ? जिस आशा पर मैं जी रही थी वह जब नष्ट हो गया तो अब मेरा इस संसार में काम ही क्या रह गया ?'

हरिदास ने साँत्वना देते हुये कहा, 'धैर्य धरिये माताजी। संसार में दुख और सुख लगे ही रहते हैं। जब सुख न रहा तो दुख भी न रहेगा। जो होना था वह हो गया अब आप अपना मार्ग निश्चित करें। पराजय के पश्चात राजा विद्यासागर ने कृपा करके हमको अपनी सेना में रख लिया है। हमारे साथ बड़ा अच्छा व्यवहार किया है। वे आपको भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहते। यदि आप चाहें तो सम्मान-पूर्वक उनके यहाँ—'

पुनीता की क्रोध से आँखें लाल हो गईं। स्फुट स्वर में बोलीं, 'आज आप कैसी ओंधी बातें कर रहे हैं हरिदास ? क्या सिंह के न रहने पर मैं शृंगात की शरण जाऊँ ? उस नराधम, नीच, पतित और भ्रष्ट व्यक्ति के कृपा-कोर की मैं भिखारिणी बनूँ ? धिक्कार है मुझे। आप शौक से उस 'अहंकारी के टुकड़े खायें, किन्तु मुझे क्षमा करें।'

कुछ सोच कर हरिदास ने कहा, 'राजा विद्यासागर ने मुझे आपके पास भेजा है। वे आपका निर्णय जानना चाहते हैं। वे आप पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करना चाहते हैं। आप स्वतन्त्र हैं। तो मैं उनसे क्या कह दूं जाकर ?

पुनीता ने उच्च-स्वर में कहा, 'आप उससे जाकर कह दें कि मैं उसके प्रस्ताव और उसके चेहरे पर थूकती हूँ।'

हरिदास चुप रहे। पुनीता कहने लगी, 'मैं प्रलोभन, राज-सत्ता और वैभव की भूखी नहीं हूँ। मैंने जीवन में केवल एक उन्हीं की आराधना की है। आज दुर्भाग्य से यदि वे इस संसार में नहीं है तो भी मेरा उनके पास पहुँचना कठिन नहीं है। मेरे लिये संसार में केवल एक ही मार्ग रह

गया है। केवल उनके ही पास पहुँचना।'

हरिदास ने कहा, 'तो फिर आपका क्या निर्णय है ?'

पुनीता ने कहा' 'यदि पति के शरीर के साथ तुम मेरे सती होने में मेरी सहायता कर सको तो—'

हरिदास ने कहा, 'स्पष्ट वादिता के लिये मुझे क्षमा करें देवी जी। महाराज ने कहला भेजा है कि या तो महारानी की भाँति उनका स्थान मेरे राजमहल में होगा या पति के शीश के साथ चिता में। आप अभी निर्णय कर लें।'

पुनीता बोल उठी, 'मेरा उचित स्थान चिता है। आप चिता तैयार करा कर उनका शीश ला दें। मैं आपकी बड़ी कृतज्ञ रहूँगी।'

सामने रक्खी हुई वस्तु की ओर संकेत करते हुये हरिदास ने कहा, 'महाराज ने कृपा कर के शीश मेरे द्वारा आपके पास भेज दिया है।'

पुनीता का चेहरा खिल उठा। हरिदास उस शीश को अनावरण करने बढ़ा किन्तु पुनीता ने कहा, 'रहने दीजिये, रहने दीजिये। मैं स्नान करने जा रही हूँ। आप जल्दी से चिता तैयार कर दें। मैं स्नान करके ही प्रभु को स्पर्श करूंगी।'

हरिदास ने उदास भाव से कहा, 'जैसी आज्ञा।'

पुनीता सरोवर की ओर चल दी।

हरिदास ने चिता तैयार करना प्रारम्भ कर दिया। आस-पास तमाम सूखी लकड़ियाँ पड़ी हुई थीं, हरिदास ने उन्हें एकत्र कर के एक सुन्दर सी चिता तैयार कर दी।

पुनीता स्नान करके लौटी। जैसा संभव हो सका उसने अपना शृंगार किया। उसने आगे बढ़ कर पति के शीश को अनावरण किया किन्तु यह क्या ?

वह केवल पुरुषों का एक गुम्फित समूह था। पुनीता के मुंह निकला, 'यह क्या ?'

हरिदास उसके चरणों में लोट गया और बोला, 'मुझे क्षमा क देवी। मैंने जो कुछ भी किया है उन्हीं की आज्ञा से किया है।'

पुनीता अभी तक कुछ समझ न सकी थी। बोली, 'किन्तु यह स रहस्य है क्या ?'

हाथ जोड़ कर हरिदास ने कहा, 'यह सब प्रभु की आज्ञा थी। रण क्षेत्र में हम लोगों की विजय हो गई है। विद्यासागर कल युद्ध में मार गया है। उठिये, बाहर सजा हुआ रथ आपके स्वागत के लिये खड़ा हुआ है। इस राज्य पर अब श्री राजीव जी का ही अधिकार ह गया है।'

कुछ रुक कर पुनीता ने कहा, 'तो क्या यह मेरी परीक्षा ली ज रही थी।'

हरिदास ने विनम्र वाणी में कहा, 'राजीव जी कभी मर्यादा भं नहीं करते। यह उन्हें लोकाचार के लिये करना पड़ा है। वे आप मिलने के लिये बड़े ही विह्वल हैं। आप जल्दी चलिये।'

अभी पुनीता उठ भी न पाई थी कि वह स्थान सैकड़ों व्यक्तियों भर गया। प्रत्येक व्यक्ति पुनीता को लक्ष्य करके पुष्प माला फेंक रह था। चारों ओर से पुष्प-वर्षा हो रही थी।

सब से आगे मुस्कराते हुये राजीव थे।

पुनीता दौड़ कर उनके चरणों में गिर पड़ी।

उसे प्रेम से उठाते हुये राजीव ने कहा, 'पुनीते—'

और—

उनका कंठ अवरुद्ध हो गया। निशानाथ ने आगे बढ़ कर भाभी चरणों का स्पर्श किया। हर्षातिरेक से सबकी वाणी रुद्ध थी।

राजीव ने भीड़ को लक्ष्य करके कहा, 'मैं आप लोगों के इस सहयो

के लिये बड़ा कृतज्ञ हूं। यह मेरी और आपकी विजय नहीं है। यह असत्य पर सत्य की, पाप पर पुण्य की तथा अन्याय पर न्याय की विजय है। संसार में आज से उस प्रकार के शासन का प्रारम्भ हो रहा है जिसमें प्रजा की सहमति से ही शासक राज्य कर सकेंगे। राजा विद्यासागर के अंत के साथ संसार से एकतन्त्र शासन प्रणाली के भी अंत का प्रारम्भ हो रहा है।'

राजीव ने कृश गात पुनीता की ओर देखा। सजल नेत्रों से पुनीता ने कहा, 'अब घर चलिये।'

मुस्करा कर राजीव ने कहा, 'कल दयासागर का राज्यभिषेक कर के हम रंगपुर रवाना हो जायेंगे।'

✳

छत्तीस

स्वर्णपुर के राजमहल का एक विशाल कक्ष ।

बहुमूल्य वस्तुओं से सारा कक्ष जगमगा रहा है। रत्न-जटित कुर्सी पर महाराज अधलेटे से हुये हैं। उनके चेहरे पर ताजगी है और है प्रसन्नता।

सेवक ने आकर कहा, 'कुछ प्रजा-जन महाराज की सेवा में उपस्थित होना चाहते हैं।

महाराज ने कहा, 'उन्हें सादर लाओ।'

सेवक चला गया। महाराज के मुंह से निकला, 'शासन की वास्तविक शक्ति जनता के हाथ में होना चाहिये। जनता ही राज्य की शक्ति है।'

थोड़ी देर में चार व्यक्तियों ने आकर महाराज का अभिवादन किया। महाराज ने उन्हें यथा-स्थान बैठ जाने का निर्देश किया।

महाराज ने धीरे-धीरे कहना प्रारंभ किया, 'मैंने आज एक विशेष कार्यवश आपको कष्ट दिया है। राज्य से आँतकवाद सदा के लिये समाप्त हो गया है। मैं चाहता हूं कि मेरे राज्य के प्रत्येक नागरिक के अधिकार समान हों तथा उन्हें शासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार

हो। मैं घोषणा करूंगा कि मेरे राज्य में कोई भी व्यक्ति अपने को किसी से हीन न समझे।'

एक व्यक्ति ने अभिवादन करके कहा, 'महाराज की जय हो। सब लोग महाराज से इसी प्रकार की आशा रखते हैं। किन्तु यह सब किस प्रकार हो इस सम्बन्ध में महाराज अपने विचार प्रकट करें।'

महाराज कुछ सोच कर बोले, 'पहली बात तो यह है कि इस युद्ध में जिस व्यक्ति की जितनी हानि हुई है वह सब राज-कोष से पूरी की जायगी। विरोधियों को भी क्षमा प्रदान की जाती है। हम किसी से बदला लेना नहीं चाहते।'

दूसरे व्यक्ति ने हाथ जोड़ते हुये कहा, 'महाराज महान हैं।'

महाराज कहते गये, 'राज्य में जितनी अट्टालिकायें नष्ट हो गई हैं वे सब हमारी ओर से फिर बनाई जायेंगी। हम अपने मंत्रि-मण्डल में सभी प्रतिनिधि प्रजा द्वारा चुने हुये रक्खेंगे। इस संबंध में प्रत्येक व्यक्ति को मत देने का अधिकार होगा। इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति अपनी पुकार हमारे सम्मुख उपस्थित होकर पहुंचा सकेगा। किसी भी राजकीय अट्टालिका का प्रयोग जनता आवश्यकता पड़ने पर कर सकेगी।'

सभी एक साथ बोल उठे, 'महाराज की जय हो।'

महाराज कहते गये, 'राज्य की समृद्धि करना मेरा काम भी है और आप लोगों का भी। आप लोग मुझे समय-समय पर सुझाव देने के लिये मिलते भी रहें।'

सब बोल उठे, 'जो आज्ञा।'

महाराज ने खड़े होते हुये कहा, 'अब आप लोग जा सकते हैं। मैं इन सब सुधारों की शीघ्र ही घोषणा करूंगा।'

सबने खड़े होकर अभिवादन किया। उनमें से एक व्यक्ति बोला, 'महाराज से एक प्रार्थना है।'

'बोलो' उत्सुकतापूर्वक महाराज ने कहा।'

वह कहने लगा, 'कदाचित् आपको ज्ञात होगा कि भीखम नामक एक चरवाहा था जिसकी भूतपूर्व महाराज की आज्ञा से बड़ी निर्दयतापूर्वक हत्या कर दी गई थी।'

महाराज किंचित शोक सा प्रकट करते हुये बोले, 'हाँ, उस वीर के बलिदान पर गर्व है मुझे। राज्य की ओर से उसका शानदार स्मारक बनवाया जायगा।'

वह व्यक्ति बोला, 'महाराज धन्य हैं। किन्तु उस भीखम का परिवार बड़े ही आर्थिक कष्ट में है। यदि—'

महाराज बोल उठे, 'मैं उसके परिवार को एक लाख स्वर्ण मुद्रायें देने की घोषणा करता हूँ।'

सब ने प्रसन्न होकर महाराज को अभिवादन किया तथा चले गये।'

महाराज कुछ थक गये थे। पलंग पर विश्राम करने लगे। उनका मस्तिष्क फिर भी न जाने किन-किन बातों में उलझा हुआ था।

तभी सोलहों शृंगार से सम्पन्न मुस्कराती हुई महारानी उनके सामने आकर खड़ी हो गईं। महाराज आँख बंद किये हुये पडे थे।

महारानी ने वीणा-विनिन्दित स्वर में धीरे से कहा, 'महाराज।'

महाराज उठ कर बैठ गये, 'किन्तु चेहरे पर किंचित रोष का सा भाव लाकर बोले, 'यह क्या ? मैं महाराज कब से हो गया तुम्हारे लिये ?'

महारानी मुस्कराती हुई बोलीं, 'भूल हो गई क्षमा कीजिये। मेरे प्रिय दया—'

महाराज हँस दिये, 'अब महारानी ने शुद्ध भाषा में मेरा नाम लिया।'

महारानी ने मुँह बना कर कहा,' और मैं महारानी कब से हो गई आपके लिये ? जाइये, मैं नहीं बोलती।'

महाराज किंचित गंभीर होकर बोले, 'मैं ठीक ही कह रहा हूँ। मैं तो तुम्हारा ही बनाया हुआ महाराज हूँ। इस सारी विजय का श्रेय तो तुम्हीं को है न ? याद करो वह दिन जब मैं जीवन से निराश होकर तुमसे अंतिम भेंट करने आया था। मैं तो नाम मात्र का महाराज हूं— इस देश की महारानी का पति मात्र।'

बिगड़ कर महारानी ने कहा, 'यह सब असह्य है मुझे। मैं अब से बोलूँगी नहीं। मैं जा रही हूं।'

महाराज ने मुसकराते हुए उसका हाथ पकड़ लिया और बोले 'क्या नाराज हो गईं ?'

महारानी ने उसी मुद्रा में कहा, 'तो फिर ठीक से बोलिये।

उसकी ठोढ़ी ऊपर उठाते हुये महाराज ने कहा 'विशाल !'

महारानी विशालाक्षी महाराज को आलिंगनपाश में लेती हुई बोली 'दया—मेरे हृदय-सम्राट !'

*

सैंतीस

फिर वही रंगपुर—

पं० चक्रधर अवस्थी की विशाल अट्टालिका। एक कक्ष में नंदा और चित्रा परस्पर बैठी बात कर रही हैं।

नंदा ने एक निश्वास छोड़ते हुये कहा, 'मैं भी कितनी अभागिन नारी हूं चित्रा। संयोग से पुत्र मिला वह भी मुझे त्याग कर चला गया।'

उसके नेत्र सजल हो गये।

चित्रा बोली, 'बीच में सुना था कि निशा को किसी युद्ध में सांघा-तिक चोट लग गई थी। अपने शास्त्री जी ही तो उसके निदान के लिये गये थे। उनका कहना था कि निशा बिल्कुल ठीक हो गया है। तब से कुछ पता नहीं चला। जी के अन्दर घुट-घुट कर रह जाती हूँ।

नंदा बोली, 'सुनने में तो यह भी आया है कि किसी राजा से उनकी लड़ाई चल रही है। भला भोला-भाला राजीव युद्ध करना क्या जाने ?'

चित्रा बोली 'सारे पापड़ बेल कर अब कांता भी कितना दुखी है। जिस पुत्र के लिये उसने सारा अपयश मोल लिया जब उसी ने उसका साथ न दिया तो फिर लाभ ही क्या हुआ ?'

नंदा कहने लगी, 'किन्तु हमारा राजेन्द्र भी पुरुषों में रत्न है। भाई के कारण उसने सारी संपत्ति को लात मार दी। जिस दिन से राजीव गया उसने उस दिन से इस घर का अन्न-जल आज तक ग्रहण नहीं किया। साल भर होने आया साधू-संयासियों की तरह रहता है। उसका कहना है कि यह सारी संपत्ति राजीव की है।

चित्रा बोल उठी 'अब तो कांता भी पलकें बिछाये राजीव के स्वागत के लिये तड़प रही है। क्यों नहीं, राजेन्द्र से अधिक राजीव उन्हें श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखता रहा है। तुमसे अधिक उसने सदा कान्ता को माना है। यह तो न जाने उसकी बुद्धि को क्या हो गया था जो अपना बुरा-भला भी न सोच सकी। अब दिन रात पछताती रहती है।'

नंदा बोली, 'मैंने तो कान्ता के प्रति कभी सौत का भाव नहीं रखा। उसे छोटी बहिन से अधिक समझा है।'

चित्रा ने कहा, 'उस समय राजेन्द्र के यहाँ उपस्थित न रहने के कारण ही यह सब काँड हो गया। इसमें सारा दोष उसी दुष्ट शास्त्री का लोग बतलाते हैं। उसी ने कान्ता की बुद्धि फेर दी थी।'

नंदा बोली, 'सुना है कि वह भी लड़ाई में मारा गया। सुनने को तो यहाँ तक मिला है कि राजीव और निशानाथ ने मिल कर एक बहुत बड़े राजा को हरा दिया है। अगर ऐसा हुआ है तो मेरा राजीव अवश्य ही राजा हो गया होगा।

चित्रा कुछ कहने ही जा रही थी कि राजेन्द्र ने आकर दोनों के चरणों का स्पर्श किया। राजेन्द्र साधारण से वस्त्र पहिने था। दुबले-पतले शरीर में भी उसका चेहरा त्याग और तपस्या से दीप्तमान था।

चित्रा पूछ बैठी, 'कुछ राजीव का समाचार भी मिला राजेन्द्र? उसे देखे तो अब बहुत दिन हो गये।'

कुछ उदास भाव से राजेन्द्र ने कहा 'नहीं मझली माँ। मैं स्वयं बड़ा चिंतित हूं। उन्होंने मुझे आज ही के दिन आने को कहा था। वे

मर्यादा और वचन की सदा रक्षा करते हैं। यदि आज वे न आये तो समझ लेना कि उनका आना असंभव ही है।

नंदा ने कहा 'तव फिर क्या होगा राजेन्द्र ?'

कुछ उदास भाव से राजेन्द्र गंभीर वाणी में बोला 'मैं कल ही सवेरे यहाँ से उस स्थान के लिये प्रस्थान कर दूँगा जहाँ से फिर कभी न लौट सकूं। यह मेरा प्रण है और मैं इस प्रण के सम्बन्ध में राजीव दादा को सब कुछ बता चुका है।'

नंदा और चित्रा दोनों ही चिंतित हो गईं। कुछ देर बाद चित्रा ने कहा 'भगवान जाने क्या होने वाला है ?'

राजेन्द्र ने कहा 'तुम क्यों दुखी होती हो मझली मां ? ईश्वर जो करता है अच्छा करता है। राजीव दादा साधारण व्यक्ति नहीं है। मुझे विश्वास है कि वे अपना वचन अवश्य ही पूरा करेंगे। वे निश्चित रूप से आज यहाँ पहुंच जायेंगे।'

नंदा ने कहा, 'आज मेरी भी सवेरे से आँख फडक रही है। चारों ओर शुभ शकुन दिखलाई पड़ रहे हैं—'

नंदा की बात पूरी भी न हो पाई थी कि एक सेवक ने आकर कहा 'कोई बाहर आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।

राजेन्द्र ने बाहर आकर देखा—

हरिदास खड़े हुये मुस्करा रहे थे।

राजेन्द्र ने उन्हें गले लगा लिया। हरिदास ने कहा 'आपकी कृपा से सर्वत्र हमारी विजय हुई। राजीव जी, निशानाथ, पुनीताजी सभी सकुशल हैं। वे अत्यंत ही निकट हैं और घंटे भर के अन्दर ही यहाँ आ जायँगे।'

राजेन्द्र हर्षातिरेक से मूर्च्छित से होने लगे। संभल कर बोले 'आप बैठे, मैं माताओं को यह शुभ समाचार सुनाने जा रहा हूं।'

राजेन्द्र अंदर आये। राजीव के आने का समाचार सुन कर नंदा, और कान्ता गद्‌गद् हो गईं। थोड़ी ही देर में सारा समाचार घर भर में फैल गया। प्रसन्नता की लहर ने उदासी को बहा कर कोसों

दूर ले जा पटका ।

कान्ता के मुंह से निकला 'आज मेरे पापों का प्रायश्चित्त हुआ ।

और—

वह बेहोश होकर गिर पड़ी ।

इतने दिन तक विमुख रहने के बाद आज राजेन्द्र को अपनी माता के प्रति थोड़ी करुणा उत्पन्न हुई । उन्होंने सोचा 'माता ने जो कुछ किया वह वात्सल्य-प्रेम में अंधी होकर ही तो किया ? पुत्र-प्रेम में पागल होकर व्यक्ति करनी-अनकरनी सभी कुछ कर बैठता है । उस समय वह आगा-पीछा कुछ नहीं सोचता । फिर माता जी पर उस बागीश शास्त्री का भी तो प्रभाव था ।'

उन्होंने दौड़ कर माता को गोद में उठा लिया । कान्ता को होश आ गया था । उनके मुंह से निकला 'मेरा राजेन्द्र !'

राजेन्द्र ने उसे साँत्वना देते हुये कहा 'मेरी माँ !'

राजीव के स्वागत के लिये जोरदार तैयारियाँ होने लगीं । सज कर अट्टालिका हंस सी उठी ।

अपराह्न होते ही रथ पर राजीव, निशानाथ और पुनीता आ पहुंचे । पीछे दूसरे रथ पर कंठवर्द्धन, पद वर्द्धन और सुकंठ थे ।

राजेन्द्र भाई के चरणों में गिर पड़े ।

दोनों भाई बडी देर तक परस्पर चिपटे हुये अश्रु गिराते रहे ।

सबसे प्रथम राजीय ने कांता के चरणों का स्पर्श किया कान्ता ने उन्हें हृदय से लगा लिया । लम्बी अवधि का कलुष क्षण भर में मिट गया ।

पुनीता सासों के चरणों पर गिरी ।

सब एक दूसरे से मिल रहे थे । आनंद का सागर उमड़ा पड़ता था । सारे घर में हर्ष का साम्राज्य छा गया ।

कंठवर्द्धन आदि का अभूतपूर्व सत्कार हुआ । नंदा ने इन्हें स्वर्ण मुद्रायें भेंट कीं । ये लोग अलग कोठी में सम्मान पूर्वक ठहराये गये ।

+ + +

नीच जाति के व्यक्ति—

खिलावन अपनी स्त्री को बुरी तरह से पीट रहा था। बीच बचाव के लिये एक भीड़ लग गई ।

लक्ष्मण ने खिलावन को डाँट कर कहा 'क्यों बे, इस तरह औरत पर हाथ उठाते तुझे लाज नहीं आती ? आखिर इसने कौन सा बड़ा अपराध किया है ।'

खिलावन सीना तान कर बोला, 'रात भर यारों के यहाँ मजे उड़ा कर अब सवेरे लौट कर आई है। मैं मर्द हूँ, ऐसी औरत को अपने घर में नहीं रख सकता ।'

स्त्री रोती हुई बोली, 'यह गलत कह रहा है। कल शाम को जब मैं घाट से लौट रही थी, दो-तीन गुंडे मुझे जबरदस्ती पकड़ कर ले गये लेकिन मैंने अपना धरम नहीं दिया। एक पंडित जी ने मुझे उन दुष्टों से छुड़ाया। ज्यादा रात हो गई थी इसलिये मुझे रात में पंडित जी के यहाँ ठहरना पड़ा। सवेरे घर आ गई। बताइये इसमें मेरा क्या कसूर है ।

खिलावन बोला 'मैं मानता हूँ कि यह ठीक कह रही है लेकिन जो औरत रात भर दूसरों के घर में रह चुकी हो वह मेरे किस काम की। मैं इसे अपने घर में नहीं रख सकता।

एक ने कड़क कर कहा, 'जब तू जानता है कि इसका कोई दोष नहीं है तो फिर इसे क्यों निकाल रहा है।'

खिलावन बोला, 'आप ठीक कह रहे है बाबूजी। इसके चाल-चलन के बारे में मुझे कोई शक नहीं है, लेकिन जो औरत रात भर दूसरे के घर में रह आई हो उसे मैं अपने घर में कैसे रख सकता हूं। जग-हंसाई को कौन रोक लेगा ?'

सब चुप थे। खिलावन कहता गया, 'मैं छोटा आदमी ठहरा, मुझे अपनी बदनामी का डर है। मुझे सभी कहेंगे। बड़े आदमियों की बात और है। उन्हें कौन कह सकता है। अपने राजीव पंडित को ही देख लीजिए न ? औरत साल भर दूसरे के घर में रह आई और फिर भी

अपने घर रख लिया। उन्हें कौन कहता है। मैं राजीव पंडित तो हूँ नहीं जो ऐसा कर सकूं ?

छोटा मुंह और इतनी बड़ी बात ! लोग सुन कर सन्न रह गये।

किन्तु बात फैलते देर कितनी लगती है ? धीरे-धीरे यह बात नगर भर में फैल गई। बात राजीव के कानों तक भी पहुँच गई।

'तब मेरे बिषय में यह धारणा है जन-साधारण की ?' राजीव का माथा घूम गया।'

उस दिन से राजीव निरन्तर उदास रहने लगे। वे निर्णय न कर पाते थे कि इस मर्यादा की रक्षा किस प्रकार की जाय ?

उन दिनों पुनीता गर्भवती थी। पति का कर्तव्य गर्भवती स्त्री को प्रसन्न रखना तथा उसकी प्रत्येक इच्छा की पूर्ति करना होता है। राजीव इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की बात चीत उससे करके उसे व्यथित नहीं करना चाहते थे। वे अंदर ही अंदर घुटने लगे।

अंत में एक दिन निशानाथ से उन्होंने सब कुछ प्रकट कर दिया।

निशानाथ ने आश्चर्य के साथ भाई के मुँह की ओर देखते हुये कहा, 'क्या आपको भी भाभी के चरित्र पर संदेह है ?'

गंभीर वाणी में राजीव ने कहा, 'पुनीता का चरित्र अग्नि की भाँति पुनीत है।'

'तब ?' निशानाथ ने पूछा।

राजीव ने कहा, 'किन्तु जन-श्रुती का क्या होगा ? लोग तो कहते हैं।

किंचित रोष के स्वर में निशानाथ ने कहा 'मरने दीजिये लोगों को हमारा हृदय तो स्वच्छ है।

राजीव चुप रहे। निशानाथ भाई का स्वभाव जानते थे। बोले 'तो इस सम्बन्ध में आप करना क्या चाहते है ? क्या भाभी को घर से निकाल देना चाहते हैं।

राजीव के नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली। निशानाथ भाई को कष्ट में न देख सकते थे। हाथ पकड़ते हुये बोले 'दादा, तुम इतने दुखी क्यों हो ? बताओ, आज्ञा दो, मैं आपके लिए क्या करूं ?'

राजीव ने धीरे से कहा 'पुनीता निर्दोष है, किन्तु फिर भी उसे त्यागना पड़ेगा निशानाथ।

निशानाथ विह्वल होकर बोले 'यह तुम क्या कह रहे हो दादा ?'

राजीव ने कहा 'मैं सदा मर्यादा के यिए प्राण देता रहा हूँ निशानाथ जीवन में मर्यादा मुझे सदैव प्रिय रही है। यह भी एक मर्यादा का ही प्रश्न है। यदि मैं ऐसा न कर सका तो मैं स्वयं इस नगर को छोड़ कर चला जाऊंगा।

निशानाथ भाई का मुंह देखते रह गये ।

राजीव ने कहा 'संसार में तुमसे अधिक मुझे कोई प्रिय नहीं है आशा है तुम मुझे इस विपत्ति से बचाने में सहायक होगे ।

नीचा सिर करके निशानाथ ने कहा 'मैं सदा आपकी सभी आज्ञाओं का पालन करूंगा। आप क्या आदेश देते हैं मुझे ?

राजीव ने कहा 'मैं पुनीता को कुछ बता कर उसे दुखी नहीं करना चाहता। तुम किसी बहाने से उसे चुपचाप किसी सुरक्षित एवं निर्जन स्थान पर पहुंचा दो।'

कुछ सोच कर निशानाथ ने कहा 'अपने नगर के श्रीमृत्युंजय शास्त्री को तो आप जानते ही हैं दादा जिन्होंने युद्ध-क्षेत्र में प्राण रक्षा की थी। वे मनुष्य के रूप में देवता हैं।'

'हाँ-हाँ, भली भाँति जानता हूँ, किन्तु इससे तुम्हारा तात्पर्य ?' राजीव ने पूछा।'

निशानाथ ने कहा 'उन्होंने सन्यास-व्रत ग्रहण करके अपने को सांसारिक जीवन से मुक्त कर लिया है। यहाँ से लगभग पचास मील दूर नदी-तट पर एवं निर्जन स्थान में उन्होंने अपनी एक कुटी बना ली है। मैं भाभी को उनके दर्शन के बहाने ले जाकर वहीं छोड़ आ सकता हूँ।

कुछ शाँति सी अनुभव करते हुये राजीव ने कहा 'तुमने मेरी चिन्ता दूर कर दी निशानाथ। वह स्थान बहुत ही सुन्दर और सुरक्षित रहेगा।'

निशानाथ चुप रहे ।

राजीव ने कहा 'लोग मुझे पशु कहेंगे, मेरी निन्दा करेंगे, किन्तु मर्यादा की रक्षा करके एवं जनपरंपरा का निर्वाह करने के लिए मैं सब कुछ सहन करने के लिए तैयार हूँ।'

अड़तीस

नदी-तट—

सुहावना और रम्य बन । इस बन के बीच में एक छोटा सा उपवन दिखलाई पड़ रहा है । पास ही में एक झोंपड़ी जिस पर फैली हुई बेलें अपनी छटा से हृदय में एक स्पन्दन उत्पन्न करती हैं । झोंपड़ी के आस-पास का स्थान इतना स्वच्छ है कि उसमें बरबस दो क्षण बैठ कर विश्राम करने की इच्छा होती है ।

अंधकार बढ़ रहा था । इसी समय गेरुआ वस्त्र धारण किये हुये एक सन्यासी, जिनकी श्वेत दाढ़ी ने अभी बढ़ना ही प्रारम्भ किया था, कमंडल लिए उसी झोंपड़ी से बाहर निकले ।

'अँखियाँ हरि दर्शन की प्यासी' सूरदास का पद गुनगुनाते हुये सीधे नदी-तट की ओर चल दिये । किन्तु यह क्या ? किसी स्त्री के कंठ से निकला हुआ करुण-क्रन्दन !

सन्यासी जी रुक गये ।

'हो राम ! हो राम !! हो राम !! इस बन में यह कैसा क्रन्दन ?'

सन्यासी जी क्रन्दन को लक्ष्य कर के आगे बढ़े । सामने ही वृक्ष के नीचे, सिकुड़ी हुई एक स्त्री-मूर्ति स्पष्ट दीख पड़ी ।

'कौन हो भद्रे ?' सन्यासी ने निकट जाकर पूछा ।'

'एक निर्दोष परित्यक्ता' स्त्री के कंठ से निकला ।

'तो फिर आओ, सन्यासी की कुटी में साधारण फल-फूल के साथ

के आश्रय मिल सकता है बेटी' सन्यासी ने सहज स्वर में कहा।'

स्त्री सन्यासी के साथ चल दी। सन्यासी ने नदी-तट पर जाकर अपना कमंडल भरा और झोंपडी की ओर चल दिया। स्त्री भी पीछे पीछे पहुंच गई।

स्त्री के मुंह से सारा इतिहास सुन कर सन्यासी ने कहा, 'राजीव बड़े ऊंचे स्तर का पुरुष है बेटी। जिन सिद्धांतों पर चल कर उसने जीवन भर कष्ट उठाया है उनसे वह विमुख कैसे हो सकता है। तुम जितनी पवित्र हो यह राजीव क्या सारा संसार जानता है।'

पुनीता बोली, 'यदि मेरे कष्ट उठाने से उनके सम्मान और उनकी मर्यादा की रक्षा होती है तो मेरा अहोभाग्य है। उन्होंने जो कुछ भी किया होगा सोच समझ कर ही किया होगा।'

सन्यासी ने कहा, 'तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो बेटी। मेरा आशीर्वाद है कि बहुत शीघ्र ही तुम ससम्मान अपने पति के पास आमंत्रित की जाओगी।

पुनीता बोली, 'आपकी शरण में आकर अब मुझे क्यों चिन्ता होने लगी? मैं इस तपोवन में बड़े सुख से रहूँगी। बहुत दिनों से में इसी प्रकार के आश्रय में रहना भी चाहती थी। कदाचित भगवान ने इसी निमित्त मुझे यहां भेजा हो।'

सन्यासी ने प्रसन्न होकर कहा, 'मैं राजीव को सूचित करना चाहता हूं कि तुम मेरे यहाँ हो। इससे उन्हें शाँति मिलेगी।

पुनीता सांस लेकर चुप हो गई।

धीरे धीरे इस प्रकार पुनीता को आश्रम में रहते हुए आठ वर्ष व्यतीत हो गये। प्रथम वर्ष में पुनीता ने एक साथ दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम सन्यासी ने रखे प्रमोद और विनोद। दोनों पिता के ही अनुरूप थे। पुनीता पुत्रों को उनके पिता की कहानी सुनाया करती थी किन्तु उसने उन्हें कभी नहीं बतलाया कि वे ही उनके पिता थे। जब उन्होंने सुना कि राजीव ने अपनी पत्नी पुनीता का परित्याग कर दिया

था तो दोनों बालक क्रोध में भर जाया करते थे ।

प्रमोद ने अकड़ कर कहा, 'यदि वह मेरा पिता होता तो मैं उससे बदला लेता ।

विनोद ने तमक कर कहा, मैं ऐसे पिता को युद्ध के लिए ललकारता ।

पुनीता ने बालकों को डाँटते हुये कहा, 'ऐसी बात नहीं किया करते हैं बालको , मैं ऐसे पुरुष की पूजा करती हूँ ।

प्रमोद स्फुट-स्वर में बोला, 'जिस व्यक्ति ने अपनी निर्दोष पत्नि को घर से निकाल दिया ऐसे पुरुष की तुम पूजा करने को कहती हो मां । मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकता ।

पुनीता चुप हो गई ।

\+ × ×

मृत्युंजय शास्त्री ने कहा, 'आप स्वयं बुद्धिमान हैं । आपने जो कुछ किया ठीक किया, परन्तु अब आपको अपनी स्त्री को बच्चों सहित वापिस भी तो बुला लेना चाहिये । मैं आज कई दिन से इस नगर में इसी सम्बन्ध में जन-मत एकत्र कर रहा हूं । इस नगर के सभी लोग मुझ से सहमत हैं ।

राजीव ने विनम्र वाणी में कहा, 'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है । आप जो कुछ भी कहेंगे मेरे परिवार के लिए हितकर ही होगा । आप जो भी व्यवस्था चाहें कर दें ।

मृत्युंजय शास्त्री ने कहा, 'मैं स्वयं पुनीता और उस के पुत्रों को लेकर आगामी पूर्णिमा के दिन आऊँगा ।'

राजीव ने कहा, 'मुझे स्वीकार है । उस दिन आपके स्वागत के लिए मैं एक विशेष उत्सव की योजना बनाऊंगा । आप अवश्य पधारें ।

मुस्कराकर मृत्युंजय शास्त्री ने कहा, 'आप धन्य हैं राजीव । आपके गार्हस्थ्य मर्यादा की रक्षा करने वाला मैंने कोई दूसरा व्यक्ति नहीं देखा ।

*

उनतालीस

आज पूर्णिमा है।

पुनीता के स्वागत के लिये राजीव की अट्टालिका में एक विशेष प्रका के महोत्सव का आयोजन किया गया है। भोज और गायन-वादन वे लिए लगभग सौ से अधिक विशिष्ट लोगों को आमंत्रित किया गया है

सारी अट्टालिका मेहमानों से भर गई है। आज प्रथम बार सभ लोग इस घर के उत्तराधिकारियों को देखेंगे और हर्षित होंगे। नंदा चित्रा और कांता हर्ष से फूली नहीं समातीं।

ठीक मध्यान्ह के समय पं० मृत्युंजय शास्त्री पुनीता, प्रमोद तथ विनोद को लेकर नगर में पहुँच गये। कई स्थानों में लोगों ने उनव स्वागत किया। अट्टालिका के द्वार पर ही नंदा ने वधू और पौत्रों व हृदय से लगाया।

यथा-स्थान बैठ जाने के पश्चात् मृत्युंजय शास्त्री ने कहना प्रारम किया, 'ईश्वर की अनुकम्पा से आज स्व० पं० चक्रधर अवस्थी व भरा-पूरा घर आनंद और संतोष से महक रहा है। राजीब के त्याग अ उनके तपस्वी जीवन ने पं० चक्रधर के नाम को अमर कर दिया है परिवार की उन्नति के लिये उन्होंने सदा व्यक्तिगत स्वार्थों को बलिद किया है। हम उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कह सकते हैं क्योंकि उन्हे मर्यादा कायम रखने के लिये अपनी प्रिय और निर्दोष पत्नी का परित्याग करने में आनाकानी नहीं की। आज वे फिर उसे ग्रहण क रहे हैं। पं० चक्रधर अवस्थी की वह परित्यक्ता पुत्र-वधू अपने पु सहित यहाँ उपस्थित है। मेरी प्रार्थना है कि श्री राजीव इस ज समाज के सामने अपनी परित्यक्ता पत्नी को ग्रहण करें।

राजीव ने बढ़ कर पुनीता का हाथ पकड़ा और उसे सम्मान पूव अपने निकट बैठा लिया।

सबने हर्षपूर्वक करतल-ध्वनि की। अब सब की दृष्टि दोनों बाल की ओर थी। राजीव ने स्नेहपूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखा।

मृत्युंजय शास्त्री ने मुस्कराकर बालकों की ओर देखा और मधुर वा में बोले, 'बालको, ये तुम्हारे पिता राजीव हैं। इन्हें उठ कर प्रणाम कर

प्रमोद और विनोद ने आश्चर्य और कुतूहल की दृष्टि से पिता

माता की ओर देखा।

उनके चेहरे गंभीर हो गये थे।

थोड़ी देर प्रतीक्षा करने के बाद राजीव ने कहा, 'प्रिय पुत्रो, आओ, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। तुम्हें हृदय से लगाना चाहता हूँ।

किन्तु दोनों उसी प्रकार अचल बैठे रहे।

सभा में सन्नाटा सा छा रहा था।

स्थिति का ज्ञान करते हुये पुनीता ने कहा, 'प्रमोद और विनोद। तुम्हारे पिता तुम्हें आज्ञा दे रहे हैं। उठो, इन्हें प्रणाम करो।

अब प्रमोद के नेत्र ऊपर उठे। उन नेत्रों में स्पष्टरूप से रोष, असहयोग, दृढ़ता और घृणा की छाया थी। उसने माता को लक्ष्य करके कहा, 'माता क्या यह सच है कि तुम इन्हीं राजीव जी की पत्नी हो। क्या यह सत्य है कि मैं इनका ही पुत्र हूँ ?

पुनीता ने स्वर में दृढ़ता लाते हुए कहा, 'हे वत्स, ये ही तुम्हारे पिता हैं।

प्रमोद मौन बैठा रहा।

पुनीता ने कहा, 'यह सब क्या है ? तुम्हें क्या हो गया है बच्चो ? शास्त्री जी की सुशिक्षा का क्या यही सुप्रभाव है तुम पर ? तुम्हें अपने पिता पर गर्व होना चाहिये।

विनोद से अब न रहा गया। वह उठ कर बोला, 'ऐसे अन्यायी, निष्ठुर और निरंकुश पिता पर तुम गर्व करने को कह रही हो मां ? मेरा तो आज लज्जा से सिर झुका जाता है।

क्रोध से पुनीता का चेहरा लाल हो गया। वह स्फुट-स्वर में बोली, 'चुप रहो विनोद। तुम अपने पिता को क्या समझ सकोगे ? वे नर के रूप में नारायण हैं।'

प्रमोद उठकर बोला, 'वे नर के रूप में नारायण हैं। वे नर के रूप में पशु हैं। उन्होंने कौनसे अत्याचार मेरी मां पर नहीं किए ? उन्होंने क्रूरता की सीमा.....'

पुनीता चिल्लाकर बोली, 'चुप रह मूर्ख। मेरे सामने उनकी निन्दा मत कर। मैं यह सब सहन नहीं कर सकती।'

परिस्थिति बिगड़ती देखकर शास्त्री जी ने कहा, 'धैर्य से काम लो बच्चों तुम्हारे पिता ने जो कुछ भी किया है वह मर्यादा की रक्षा के लिए किया है।'

अकड़कर प्रमोद ने कहा 'अपनी निर्दोष और गर्भवती स्त्री को बीहड़ बन में ले जाकर छोड़ आना ही क्या मर्यादा की रक्षा है आचार्य ? मैं ऐसे पिता से किसी प्रकार का भी समझौता नहीं कर सकता।'

पुनीता ने अँगुलियों से अपने दोनों कान बन्द कर लिए। उसका शरीर काँप रहा था। चेहरा रक्त वर्ण हो गया था।

मृत्युंजय शास्त्री ने कहा, 'तुम अभी उस मर्यादा को क्या समझ सकोगे बच्चों! इतने महान व्यक्ति के सिद्धांतों को समझने में युग के युग बीत जायेंगे। लोग इच्छा करने पर भी उनका अनुकरण न कर पायेंगे। चलो, नादानी मत करो।'

फिर भी प्रमोद और विनोद अकड़े बैठे रहे।

परेशानी बढ़ रही थी। पुनीता ने एकाएक खड़े होकर कहा, 'तो क्या तुम इस विषय में माता की भी आज्ञा न मानोगे बच्चों?'

दोनों ने दृढ़-स्वर में कहा, नहीं-नहीं।'

मृत्युंजय शास्त्री को रोष आ गया था। वे चिल्लाकर बोले, 'तो क्या तुम्हारा यही दृढ़ निश्चय है प्रमोद और विनोद? मैं स्पष्टरूप से जानना चाहता हूँ?'

प्रमोद और विनोद उठकर खड़े हो गए और प्रमोद बोला, 'सुनो आचार्य, मेरे ऐसे अत्याचारी, निर्दय, निरंकुश....

और—

जिस सती-साध्वी ने नाना प्रकार के कष्ट उठाकर इस निर्मोही, निष्ठुर, क्रूर...

पुनीता सारा जोर लगाकर चिल्लाई, 'यह सब क्या हो रहा है? हे धरती माता तू फट क्यों नहीं जाती? तू मुझे उठा ले। हे भगवान उनकी निन्दा....' 'चुप रहो चुप रहो, चुप.... चुप...।'

और—

वह मूर्छित होकर गिर गई। उसके नेत्र ऊपर चढ़ने लगे और हृदय की गति बन्द हो गई। पुनीता चली गई थी।

उस आनन्द के आयोजन में शोक और कोहराम का बवंडर बहने लगा था। राजीव ने पुनीता का शव गोद में उठा लिया। विनोद और प्रमोद पछाड़ खाकर माँ के शव पर गिर पड़े।

दोनों बालकों को हृदय से लगाते हुए राजीव ने कहा, 'अब तो मुझे क्षमा कर दो मेरे बच्चों!'

समाप्त